अध्याय – 8
सजीवों की प्रमुख क्रियाएं
(Major Activities of Living Organisms)

8.1 पोषण की अवधारणा और महत्व
(Concept of Nutrition and its importance)

जीवों के भोजन ग्रहण करने की प्रक्रिया **पोषण** (Nutrition) कहलाती है। भोजन में उपस्थित पोषक तत्वों के कारण शारीरिक वृद्धि होती है तथा विभिन्न रासायनिक क्रियाओं हेतु ऊर्जा प्राप्त होती है यह **पोषण (Nutrition)** कहलाता है। उन सभी भोज्य पदार्थों को जिनसे सजीव ऊर्जा प्राप्त करते हैं और नये कोशिकीय पदार्थों का संश्लेषण करते हैं, वे **पोषक पदार्थ (Nutrients)** कहलाते हैं।

सभी सजीव प्राणियों को शरीर की विभिन्न जटिल रासायनिक क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए भोजन एवं उसमें विद्यमान पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। भोजन में उपस्थित पोषक तत्वों की सहायता से ही सजीवों की वृद्धि, टूट–फूट की मरम्मत, विकास, रोगों से रक्षा, नियंत्रण एवं प्रजनन कार्य संभव होता है। अगर शरीर को भोजन नहीं मिले तो सभी शारीरिक क्रियाएं व कार्य बंद हो जाएंगे।

सजीवों का शरीर गाड़ी के इंजन के समान है जैसे इंजन को चलाने के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है उसमें जब तक ईंधन डालते जाए, इंजन चलता रहेगा और बंद करने पर इंजन कार्य करना बंद कर देता है। इसका कारण यह है कि इंजन को चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है जो कि उसे ईंधन से प्राप्त होती है। इंजन की भांति ही हमारे शरीर को कार्य करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है जो हमारे शरीर को भोजन तथा पोषक पदार्थों द्वारा प्राप्त होती है। शरीर का तापमान बनाये रखने के लिए भी भोजन तथा पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जीवों के शरीर में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इस वृद्धि के लिए हमें पोषण की आवश्यकता होती है।

8.2 पोषण के प्रकार
(Type of Nutrition)

पोषण विधि के आधार पर सजीवों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (अ) स्वपोषणी (Autotrophs) (ब) विषमपोषी (Heterotrophs)

(अ) स्वपोषी (Autotrophs)– हरे पौधों में क्लोरोफिल नामक पदार्थ होता है। अतः ये वातावरण से कार्बन–डाई–ऑक्साइड, जल, सौर ऊर्जा आदि लेकर स्वयं अपना भोजन बनाते हैं, इन्हें **स्वपोषी (Autotrophs)** कहते हैं, कुछ जीवाणु जैसे –सल्फर जीवाणु नाइट्रीकारी जीवाणु एवं लौह जीवाणु भी स्वपोषी हैं। ये गंधक, नाइट्रोजन व लौह यौगिकों का ऑक्सीकरण करके उससे प्राप्त ऊर्जा से अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं, इन्हें **रसायन संश्लेषी स्वपोषी** कहते हैं।

(2) परपोषी / विषमपोषी (Heterotrophs) – प्राणी जो स्वयं अपना भोजन नहीं बना सकते हैं और दूसरों जीवों पर अपने भोजन के लिए निर्भर रहते हैं **विषमपोषी / परपोषी** कहलाते हैं। इस प्रकार के पोषण को परपोषण कहते हैं। जो निम्न प्रकार के हैं –

(a) प्राणीसमभोजी पोषण (Holozoic Nutrition) – वे प्राणी जो अन्य प्राणियों या उनके द्वारा निर्मित कार्बनिक पदार्थों को ग्रहण करते हैं **प्राणीसमभोजी** सजीव कहलाते हैं। इन्हें आहार स्त्रोत के आधार पर निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है–

(i) शाकाहारी (Herbivores) – वे जन्तु जो भोजन के लिए पौधों पर प्रत्यक्ष निर्भर रहते हैं, **शाकाहारी** कहलाते हैं। उदाहरण बकरी, गाय, हिरण आदि।

(ii) मांसाहारी (Carnivores) – सजीव जो दूसरे जन्तुओं का भक्षण कर भोजन प्राप्त करते हैं **मांसाहारी** कहलाते हैं।

मांसाहारी जन्तु – उदाहरण शेर, चीता आदि। कुछ पादप **कीटाहारी** हैं जैसे – घट पादप, *युट्रिकुलैरिया, ड्रोसेरा* आदि।

(iii) सर्वाहारी (Omnivorous) – वे जन्तु जो पौधों एवं प्राणी दोनों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, **सर्वाहारी** कहलाते हैं उदाहरण – चूहे, सुअर, मनुष्य आदि।

(b) परजीवी (Parasites) – वे प्राणी जो अन्य सजीव प्राणियों और पादपों के शरीर के बाहर या भीतर रहकर उनसे आहार प्राप्त करते हैं, **परजीवी** कहलाते हैं। सामान्य रूप से परजीवी दो प्रकार के होते हैं–

- **बाह्य परजीवी** (Ectoparasite) – परजीवी जो अपना पोषण, परपोषी की त्वचा से चिपक कर प्राप्त करते हैं **बाह्य परजीवी** कहलाते हैं। उदहारण – जूँ, मच्छर, खटमल (प्राणी), अमरबेल (पादप)।
- **अंतःपरजीवी** (Endoparasite) – परजीवी जो अपना पोषण परपोषी के दैहिक अंगों में जैसे आंत, देहगुहा, यकृत, रुधिर

चित्र 8.1: जीवों में विभिन्न प्रकार का पोषण

आदि में प्रवेश कर प्राप्त करते हैं। उदाहरण – यकृत कृमि, फीता कृमि, *प्लाज्मोडियम* आदि।

(c) सहजीवी (Symbiosis) – इस प्रकार के पोषण में भिन्न प्रकार की जातियां साथ रहती हैं। इसमें दोनों ही जातियों को लाभ प्राप्त होता है तथा किसी को भी हानि नहीं पहुंचती है। यह **सहजीविता** कहलाती है तथा वे जीव **सहजीवी** कहलाते हैं। उदाहरण – शैवाल तथा कवक दोनों मिलकर लाइकेन का निर्माण करते हैं। ये अपना जीवन, जीवनपर्यंत साथ गुजारते हैं।

(d) मृतोपजीवी पोषण (Saprobic Nutrition) – वे सजीव जो पौधों या जन्तुओं के क्षयमान (Decaying) अर्थात् सड़ते–गलते ऊतकों से आहार प्राप्त करते हैं **मृतोपजीवी** कहलाते हैं। उदाहरण जीवाणु (Microbes), कवक (Fungi) व कुछ प्रोटोजोआ प्राणी।

8.3 पादपों में पोषण
(Nutrition In Plants)

प्रत्येक सजीव प्राणी को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन से ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे वह जीवन की समस्त क्रियाओं का संचालन करता है। यदि शरीर को भोजन नहीं मिले तो हमारे शरीर की सभी क्रियाएँ एवं कार्य बंद हो जायेंगे। पादपों में भोजन निर्माण की प्रमुखतम विधि प्रकाशसंश्लेषण है।

8.3.1 प्रकाशसंश्लेषण (Photosynthesis)

पर्यावरण में संतुलन के दृष्टिकोण से पादपों में प्रकाश संश्लेषण एक महत्वपूर्ण क्रिया है। इस क्रिया द्वारा पादप, वातावरण में उपस्थित कार्बन–डाई– ऑक्साइड को प्रकाश की उपस्थिति में पर्णहरित (Chlorophyll) की सहायता से भोजन बनाते हैं और बदले में जीवनदायी गैस ऑक्सीजन उपलब्ध कराते हैं।

पौधे और जंतुओं की ऊर्जा प्राप्त करने की विधि में बहुत अंतर है। जंतु अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते, वे अपना भोजन हरे पेड़–पौधों से प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत हरे पेड़ पौधे सूर्य से प्राप्त प्रकाश का प्रयोग कर उसे रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं। यह ऊर्जा एड़िनोसिन ट्राइफॉस्टफेट (ATP) तथा अपचयित निकोटिनामाइड एडिनीन डाई फॉस्फेट (NADPH) के रूप में संचित रहती है। पौधे इस ऊर्जा का उपयोग कार्बन–डाई–ऑक्साइड के अपचयन में करते हैं। सम्पूर्ण क्रिया के फलस्वरूप कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होते हैं जिनसे सभी प्राणी भोजन लेते हैं।

हरे पौधों द्वारा प्रकाश ऊर्जा को अवशोषित कर उसे रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने की क्रिया को **प्रकाशसंश्लेषण** कहते हैं।

8.3.2 प्रकाशसंश्लेषी वर्णक
(Photosynthetic Pigment)

सभी प्रकाशसंश्लेषी जीव, प्रकाश ऊर्जा को लेकर उसे रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं। यह कार्य वर्णकों द्वारा किया जाता है। ये वर्णक विशिष्ट कोशिकांगों में व्यवस्थित रहते हैं, जो कोशिकाद्रव्य में बिखरे होते हैं। **हेकल** नामक वैज्ञानिक ने इन्हें **प्लास्टिड्स (Plastids; लवक)** नाम दिया। ये कवकों तथा प्रोकेरियोट्स जैसे जीवाणु तथा नील हरित शैवालों को छोड़कर सभी पादप कोशिकाओं में पाये जाते हैं।

हरित लवक (Chloroplasts)– ये हरे रंग के लवक होते हैं। इनका हरा रंग इनमें पाये जाने वाले वर्णक पर्णहरित (Chlorophyll) के कारण होता है। पौधों तथा पत्तियों का हरा रंग इन्हीं के कारण होता है। इनका कार्य प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन का निर्माण करना होता है हरितलवक में दो स्पष्ट क्षेत्र होते हैं– पीठिका या स्ट्रोमा (Stroma) एवं ग्रेना (Grana)

(i) **स्ट्रोमा–** यह हरितलवक की पीठिका बनाता है। इसमें प्रोटीन संश्लेषण करने वाले राइबोसोम बिखरे रहते हैं। प्रकाश संश्लेषण की अप्रकाशिक अभिक्रिया स्ट्रोमा के इसी भाग में होती है।

(ii) **ग्रेना–** हरित लवक के इस भाग में प्रकाश संश्लेषण की प्रकाशिक अभिक्रिया सम्पन होती है। प्रत्येक हरितलवक में 40–60 ग्रेना पाये जाते हैं। ग्रेनम क्षेत्र में पट्टलिकाएँ सिक्कों के ढेर की भांति एक दूसरे पर व्यवस्थित रहती हैं इन्हें **थायलेकॉइड्स** कहते हैं।

उच्च पौधों में हरित लवक में चार प्रकार के वर्णक पाये जाते हैं दो प्रकार के हरे वर्णक जिन्हें क्लोरोफिल a तथा b कहते हैं तथा नारंगी एवं पीले रंग के वर्णक जिन्हें क्रमशः कैरोटीन एवं जैन्थोफिल कहते हैं।

8.3.3 प्रकाशसंश्लेषण की क्रियाविधि
(Mechanism of Photosynthesis)

कार्बन डाई ऑक्साइड तथा जल, प्रकाश संश्लेषण के दो प्रमुख कच्चे पदार्थ हैं। पौधों के पर्णहरित तथा अन्य वर्णक प्रकाश ऊर्जा का अवशोषण कर इसका रासायनिक उर्जा के रूप में रूपान्तरण कर देते हैं। प्रकाश संश्लेषण की समग्र क्रिया को निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

$$6CO_2 + 12H_2O \xrightarrow[\text{पर्णहरित}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6H_2O + 6O_2 \uparrow$$

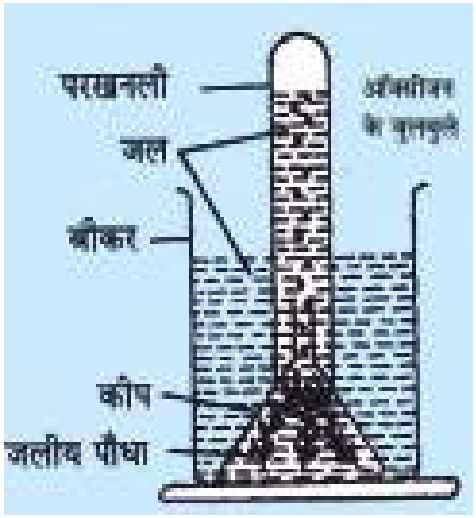

चित्र 8.2 प्रकाशसंश्लेषण में ऑक्सीजन निकलती है

प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया मुख्य रूप से दो चरणों में सम्पन्न होती है–

(i) प्रकाश अभिक्रिया

(ii) अप्रकाशिक अभिक्रिया

(i) प्रकाश अभिक्रिया (Light Reaction)

इस क्रिया के अंतर्गत सूर्य की विकिरण ऊर्जा का रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तन होता है। इसमें निम्नलिखित मुख्य क्रियाएं हैं–

(1) कुछ निश्चित तरंग दैर्ध्यों के प्रकाश का पर्णहरित (Chlorophyll) द्वारा अवशोषण

(2) पर्णहरित का उत्तेजन (Excitation)

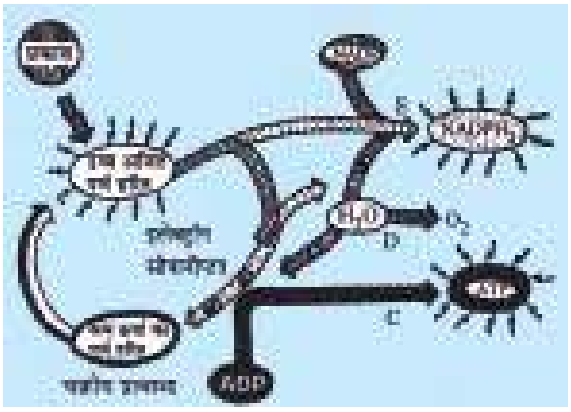

चित्र 8.3 : प्रकाश अभिक्रिया

(3) जल का प्रकाशिक अपघटन (Photolysis)

(4) ऑक्सीजन का निकलना तथा

(5) रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तन जिसके अंतर्गत ATP के रूप में ऊर्जा का संग्रह और NADPH का निर्माण या संश्लेषण।

यह चरण प्रकाश ऊर्जा पर निर्भर करता है, अतः इसे प्रकाश अभिक्रिया (Light reaction) अथवा प्रकाश–रासायनिक अभिक्रिया (Photo chemical reaction) कहते हैं।

यह क्रिया क्लोरोप्लास्ट के अंदर स्थित थाइलेकॉइड की झिल्ली में होती है।

(ii) अप्रकाशिक अभिक्रिया (Dark Reaction)

प्रकाश संश्लेषण की इस क्रिया में संश्लेषण होता है जिसके फलस्वरूप कार्बन डाई ऑक्साइड से कार्बोहाईड्रेट का निर्माण होता है। इस क्रिया के लिए प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है, इसलिए इसे अप्रकाशिक अभिक्रिया भी कहते हैं।

यह क्रिया हरितलवक के स्ट्रोमा भाग में होती है।

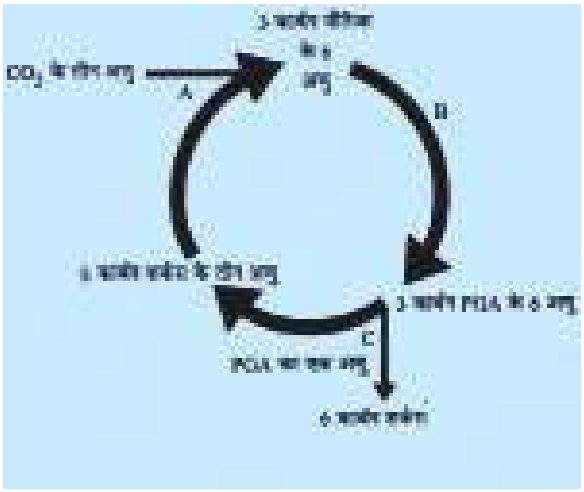

चित्र 8.4 : अप्रकाशिक अभिक्रिया

इस क्रिया में कार्बन डाई ऑक्साइड का स्थिरीकरण एवं अपचयन होता है। जिसके फलस्वरूप प्रथम उत्पाद PGA (फास्फोग्लिसरीक अम्ल) तीन कार्बन अणु का होने के कारण इसे C_3 चक्र कहते हैं। अथवा इसे केल्विन चक्र भी कहते हैं।

8.3.4 प्रकाशसंश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक

प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है। **बाह्य कारक** एवं **आन्तरिक कारक**।

(I) बाह्य कारक (External factors)

इसमें सूर्य प्रकाश, कार्बन डाई ऑक्साइड सान्द्रता, ऑक्सीजन, ताप व जल सम्मिलित हैं।

(II) आन्तरिक कारक (Internal factors)

इसमें पर्णहरित एक महत्वपूर्ण कारक है।

8.3.5 जीवाण्वीय प्रकाशसंश्लेषण (Bacterial Photosynthesis)

जीवाण्वीय प्रकाशसंश्लेषण एक विशिष्ट प्रकार की प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया है, जो कुछ प्रमुख प्रकार के जीवाणुओं में सम्पन्न होती है। इस क्रिया के अन्तर्गत भी सूर्य ऊर्जा के

उपयोग से कार्बन डाई–ऑक्साइड का अपचयन होता है। उदाहरण – नीले हरे जीवाणु, बैंगनी जीवाणु।

8.4 भोजन के प्रमुख घटक

भोजन में पाये जाने वाले जटिल रासायनिक पदार्थ जो कि शरीर में होने वाली विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए एवं स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उचित मात्रा में अति आवश्यक होते हैं, **भोजन के घटक** या **पोषक तत्व** (Nutrients) कहलाते हैं।

पोषक तत्वों को निम्नलिखित 6 वर्गों में विभाजित किया गया है–

(1) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)
(2) वसा (Fat)
(3) प्रोटीन (Protein)
(4) खनिज लवण (Mineral salts)
(5) विटामिन (Vitamin)
(6) जल (Water)

यद्यपि जल में किसी भी तरह के पोषक तत्व विद्यमान नहीं होते हैं, फिर भी चूंकि यह विभिन्न शारीरिक क्रियाओं हेतु आवश्यक है अतः जल भी पोषक घटक में शामिल किया जाता है। एक अन्य पदार्थ जो कि पोषक तो नहीं है लेकिन हमारे भोजन में इसका होना आवश्यक है। उसे **रूक्षांश (Roughage)** या **आहारी रेशे** कहते हैं। जंतुओं के भोजन में यह अधिकांशतः अपचनीय पादप–कोशिका भित्तियों वाला भाग है। यह भोजन पचने के बाद, बचे अपशिष्ट भाग को शरीर के बाहर निकालने में सहायक है।

8.5 जन्तुओं में पोषण

वनस्पतियाँ वायुमण्डल से प्राप्त CO_2 को प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया से शर्करा में परिवर्तित करती हैं, तथा जन्तु इन्हीं वनस्पतियों को या वनस्पति खाने वाले दूसरे जन्तुओं से पोषण लेकर ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

8.6 पाचन (Digestion)

8.6.1 पाचन का अर्थ

परपोषी जीव – जन्तु जो भोजन पादपों से प्राप्त करते हैं वह अविसरणीय (Non Diffusable) अवस्था में होता है, पाचक रसों की सहायता से इन्हें विसरणीय (Diffusable) सरल यौगिकों में परिवर्तित किया जाता हैं। इस क्रिया को पाचन (Digestion) कहा जाता है। इन क्रियाओं को करने हेतु विशिष्ट अंग होते हैं जिन्हें **पाचन अंग** (Digestive organ) कहते हैं एवं यह तंत्र **पाचन तंत्र** (Digestive system) कहलाता है।

8.6.2 पाचन की आवश्यकता

खाद्य पदार्थों में अनेक प्रकार के पोषक तत्व एवं अणु उपस्थित होते हैं जिनका उपयोग नये ऊतकों के निर्माण एवं पुराने ऊतकों की मरम्मत हेतु किया जाता है। चूंकि यह पोषक तत्व जन्तुओं द्वारा स्वयं नहीं बनाये जा सकते अतः पादप द्वारा बनाये गये पोषण को पाचन द्वारा अपघटित करके जन्तुओं द्वारा अवशोषित किया जाता है। इसी कारण पाचन क्रिया द्वारा भोजन को सरल उत्पादों में रूपांतरित किया जाता है जिसे पाचन कहते हैं।

8.6.3 मनुष्य में पाचन तंत्र के प्रमुख भाग

पाचन तंत्र को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है–

(1) आहार नाल (Alimentary canal)
(2) सम्बन्धित ग्रंथियां (Associated glands)

आहार नाल मुखगुहा से शुरू होकर ग्रसनी, ग्रासनली, आमाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत से होते हुए मलद्वार पर खत्म होती है। दूसरी ओर लार ग्रंथियां, अग्नाशय तथा यकृत आदि सम्बन्धित ग्रंथियां हैं ।

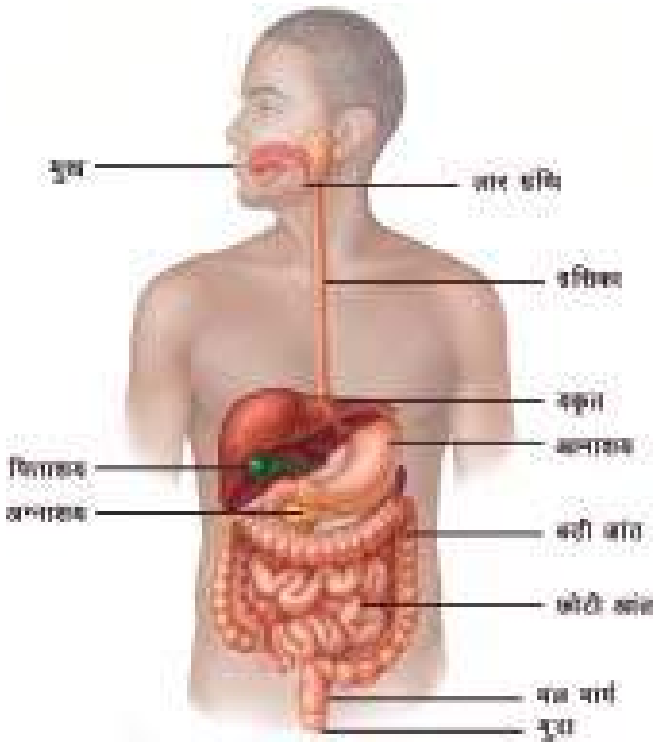

चित्र 8.5 : मुनष्य में पाचन तंत्र

(1) **आहारनाल** (Alimentary canal) – आहारनाल को निम्नलिखित भागों में बांटा जाता है

(i) **मुखगुहा** (Buccal cavity) – मुंह के अन्दर पाई जाने वाली गुहा बाहर से ऊपरी एवं निचले होंठ (Lip) द्वारा रक्षित होती है। मुखगुहा में जबड़े पाये जाते हैं जिनमें दांत स्थित होते हैं जो भोजन

को काटने, तोड़ने, कुतरने एवं चबाने के लिए होते हैं।

मुखगुहा में मांसल जीभ (Tongue) पाई जाती है जिस पर स्वाद कलिकाएं उपस्थित होती है, जो स्वाद का ज्ञान करने में सहायक होती हैं। मुखगुहा में लार ग्रंथियां (Salivary gland) भी पायी जाती है जिनसे लार (Saliva) स्त्रावित होता है जिसमें एमाइलेज (Amylasel/ptylin) एन्जाइम पाया जाता है जो माण्ड (Starch) को माल्टोज में परिवर्तित कर देता है। इसके अतिरिक्त, लार भोजन को गीला एवं लुग्दी समान बनाता है, व मुंह में एन्टीसेप्टिक का कार्य करता है।

(ii) ग्रसनी (Pharynx) – मुखगुहा एवं ग्रासनली के बीच स्थित ग्रसनी का कार्य भोजन को निगलना होता है।

(iii) ग्रासनली (Oesophagus) – छोटी एवं संकरी नली जो ग्रसनी को आमाशय से जोड़ती है। ग्रासनली द्वारा कोई पाचक एन्जाइम स्त्रावित नहीं किया जाता है। यह भोजन को आमाशय तक पहुंचाती है।

(iv) आमाशय (Stomach) – आहारनाल का सबसे फैला हुआ थैली सदृश्य भाग अंग्रेजी के 'J' अक्षर समान दिखाई देता है। यह डायफ्राम के नीचे उदरगुहा के बांई (Left) ओर स्थित होता है।

आमाशय में भोजन के पहुंचते ही जठर रस का स्त्रवण होता है जिसे आमाशय रस भी कहते हैं।

आमाशय रस (Gastric juice) – आमाशय के अस्तर से स्त्रावित रंगहीन, खट्टा द्रव्य जिसमें 90% जल व 0.5% हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) तथा पेप्सीन, रेनीन एवं लाइपेज एन्जाइम होते हैं। इसका pH 0.9-1.5 होता है।

आमाशय का कार्य

1. भोजन को संग्रह करके रखता है।
2. प्रोटीन का सर्वप्रथम पाचन यहाँ प्रारम्भ होता है।
3. आमाशय के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) भोजन को अम्लीय बनाने के साथ भोजन के साथ आये जीवाणुओं को मार डालता है, पेप्सीन HCl के साथ मिलकर प्रोटीन अणुओं को पेप्टोन एवं प्रोटीओजेज में बदल देता है, रेनीन दूध में पाये जाने वाले प्रोटीन कैसीनोजन को कैसीन में बदल देता है। जिसका पेप्सीन द्वारा पाचन होता है।
4. आमाशय ग्लुकोज, पानी, एल्कोहल एवं कई प्रकार की दवाइयों को अवशोषित भी करता है।

(v) छोटी आंत (Small intestine) – अत्यधिक घुमावदार एवं ऐंठी हुई नली जो आमाशय एवं बड़ी आंत के बीच में फैली होती है। इसकी लम्बाई लगभग 22 फीट तक होती है। लम्बाई अत्यधिक होने के बावजूद इसके बड़ी आंत से कम व्यास के कारण इसे छोटी आंत कहा जाता है। यह नलिका तीन भागों में विभक्त होती है–

1. **ड्योडीनम** (Duodenum) – यह छोटी आंत का प्रारम्भिक भाग है जो 'C' आकार की 25 से.मी. लम्बी नली है। इसमें पित्त एवं अग्नाशयी ग्रंथियों की नलिकाएं खुलती है।
2. **जेजुनम** (Jejunum) – यह बीच का कुण्डलित भाग है। इसका काम भोजन का पाचन एवं अवशोषण करना है। यह भाग आंत्रीय रस का स्त्रावण करता है।
3. **इलियम** (Ileum) – छोटी आंत का पश्च भाग तीन मीटर लम्बा होता है तथा सीकम के पास समाप्त होकर बड़ी आंत से जुड़ता है। इसमें कई पाचक ग्रंथियां पाई जाती है एवं यह अवशोषण भी करता है।

छोटी आंत का कार्य

1. छोटी आंत के ड्योडिनम में अग्नाशय (Pancreas) द्वारा स्त्रावित पाचक रस (Pancreatic juice) आता है। जिसकी वजह से छोटी आंत में पाचन का माध्यम क्षारीय होता है जिसका pH 7.1 से 8.2 तक होता है। इसमें मुख्यतः एमाइलेज, माल्टेज, सुक्रेज, लाइपेज (Pancreatic lipase), काइमोट्रीप्सीनोजन एवं ट्रिप्सीनोजन एन्जाइम होते हैं।
2. छोटी आंत में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा का पूर्ण रूप से पाचन हो जाता है। ये सभी यौगिक अपने सरलतम अवयवों में अपघटित हो जाते हैं।
3. छोटी आंत पचे हुए भोजन का अवशोषण भी करती है। यह आंतों में उपस्थित अंकुरों (Microvilli) द्वारा होता है।

आंत्र रस का नाम एवं कार्य

आंत्र की भित्ति में पाई जाने वाली पाचक ग्रंथियों में स्त्रावित रस को आंत्रीय रस या सकस एन्ट्रीकस (Succus entricus) कहते हैं, जिनमें निम्न एन्जाइम पाये जाते हैं–

1. **पेप्टीडेज** (Peptidase) – यह प्रोटीन के पेप्टोन पर क्रिया कर अमीनो अम्ल में बदलता है।
2. **माल्टेज** (Maltase) – माल्टोज पर क्रिया कर उसे ग्लुकोज में बदलता है।
3. **सुक्रेज** (Sucrase) – यह सुक्रोज शर्करा को ग्लुकोज व फ्रक्टोज में बदलता है।
4. **लैक्टेज** (Lactase) – यह दूध शर्करा पर क्रिया करके उसे ग्लुकोज व गैलेक्टोज में बदल देता है।
5. **लाइपेज** (Lipase) – वसा पर कार्य कर वसीय पदार्थों को वसीय अम्ल एवं ग्लिसरोल में परिवर्तित करता है।
6. **एन्टरोकाइनेज** (Enterokinase) – यह एन्जाइम अग्नाशय

द्वारा स्त्रावित निष्क्रिय ट्रिप्सिनोजन को सक्रिय ट्रिप्सिन में बदल देता है।

(vi) बड़ी आंत (Large intestine) – छोटी आंत का इलियम भाग बड़ी आंत के कॉलन से आकर जुड़ता है। इसे तीन भागों में बांटा गया है–

1. **कॉलन** (Colon) – बड़ी आंत का प्रारम्भिक भाग जिसके अन्दर की सतह पर सूक्ष्म अंकुर (Microvilli) नहीं होते हैं तथा गोबलेट कोशिका (Goblet cell) म्यूकस स्त्रावित करती है।

2. **सीकम** (Caecum) – 10 सेन्टीमीटर लम्बी नली जो कॉलन से जुड़ी होती है, इसके अंत में **अपेन्डिक्स** (Appendix) पाया जाता है।

3. **मलाशय** (Rectum) – आहार नाल का अंतिम भाग लम्बी नली के रूप में होता ई इसके अंतिम छोर में वृत्ताकार छिद्र होता है जिसे **मलद्वार** (Anus) कहते हैं। बड़ी आंत में कोई महत्वपूर्ण पाचन क्रिया नहीं होती है।

बड़ी आंत का कार्य

1. यह जल खनिज एवं औषध का अवशोषण करती है।
2. श्लेष्म का स्त्रावण करके मलद्वार को चिकना बनाकर अपचित पदार्थों का बाह्य निकास आसान बनाता है।

8.7 जीवों में पाचन की प्रमुख जानकारी

1. अमीबा में पाचन – प्रोटोजोआ संघ का यह प्राणी जल में पाया जाता है। अमीबा के एककोशिकीय होने के कारण पोषण के लिए अमीबा में पाचन अंग अनुपस्थित होते हैं। अमीबा जैसे ही भोजन के सम्पर्क में आता है कुटपादों द्वारा भोज्य पदार्थों के चारों ओर खाद्य धानी का निर्माण कर लेता है। भोज्य पदार्थ युक्त खाद्यधानी के अमीबा के शरीर में जाते ही उपापचयी रसों का स्त्रवण होने लग जाता है जिससे धीरे– धीरे भोज्य पदार्थ का पाचन हो जाता है।

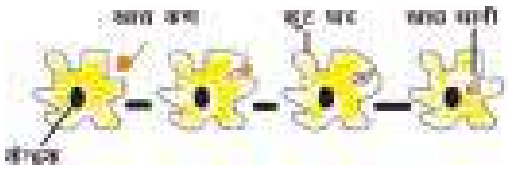

चित्र 8.6 : अमीबा में पाचन

2. यूग्लीना में पाचन – युग्लीना में स्वपोषी या पादप समपोषी (Holophytic) और मृतपोषी प्रकार का पोषण होता है इस प्रकार की दोहरी पोषण विधि मिश्रपोषी पोषण (Mixotropic nutrition) कहलाती है।

3. केंचुए में पाचन – केंचुओं का भोजन मृत कार्बनिक पदार्थ होता है। यह मिट्टी के साथ विशेषकर वनस्पति को खाता है। केंचुआ अपनी ग्रसनी की पम्पिंग क्रिया द्वारा अपना भोजन लेता है। पहले यह अपने मुख को मिट्टी में दबाता है। फिर ग्रसनी की भित्ति की संकुचनशील चुषण क्रिया द्वारा मिट्टी के कणों को मुख प्रकोष्ठ में खींच लेता है। ग्रसनी से शरीर भित्ति तक फैले पेशीय डोरों की क्रिया द्वारा ग्रसनी की इस क्रिया को बल मिलता है।

केंचुए की आहारनाल एक पूर्ण और सीधी नली होती है जो शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई में फैली रहती है। मुख और गुदा क्रमशः इसके अगले व पिछले छिद्र होते हैं।

8.8 श्वसन (Respiration)

8.8.1 श्वसन का अर्थ एवं आवश्यकता

वायवीय जीवों को जीवित रहने हेतु ऑक्सीजन (O_2) की आवश्यकता होती है क्योंकि ऑक्सीजन ही कार्बनिक भोज्य पदार्थों का ऑक्सीकरण या विघटन करके ऊर्जा प्रदान करते हैं। पोषक पदार्थों के ऑक्सीकरण की यह प्रक्रिया **कोशिकीय श्वसन** कहलाती है। पादप श्वसन में ऑक्सीजन का अर्न्तग्रहण रंध्रों द्वारा किया जाता है, जो बाद में कोशिका स्तर पर श्वसन में काम आती है। जबकि जंतुओं में इस कार्य हेतु श्वसनांगों का जटिल तंत्र कार्य करता है।

सजीव कोशिकाओं को निरन्तर ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जीव श्वसन क्रिया करता है। श्वसन में उत्पन्न कार्बनडाईऑक्साइड गैस (CO_2) को कोशिकाओं से बाहर निकालना आवश्यक होता है। श्वसन प्रत्येक जीवित कोशिका का प्रमुख लक्षण है। यह क्रिया दिन व रात चलती रहती है तब भी जब हम कोई भी कार्य नहीं करते। इस क्रिया में शर्करा या ग्लुकोज का ऑक्सीकरण होता है जिसके फलस्वरूप कार्बनडाईऑक्साइड एवं जल बनते हैं तथा ऊर्जा का निष्कासन होता है। ऊर्जा ATP (ऊर्जा मुद्रा) के रूप में संचित होती जाती है। इस ऊर्जा का उपयोग सजीवों द्वारा शरीर को सुचारू रूप से चलाने के काम आता है। श्वसन क्रिया ऑक्सीजन की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति दोनों में हो सकती है।

आप श्वसन की तुलना दहन से कर सकते हैं–

(i) दोनों में कार्बनिक यौगिक अपघटित होते हैं और ऊर्जा निकलती है।

(ii) दोनों में कार्बन डाई ऑक्साइड और जल बनता है।

(iii) दोनों को जलने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

किन्तु श्वसन व दहन में अंतर है जिसे निम्नलिखित सारणी स्पष्ट किया जा सकता है–

श्वसन (Respiration)	दहन (Combustion)
1. यह सामान्य ताप पर (37^0C) कार्य करता है	1. दहन के लिए उच्च ताप की आवश्यकता होती हैं।
2. यह मंद प्रक्रिया है।	2. यह तेज प्रक्रिया है।
3. भोजन के आक्सीकरण में कई अवस्थाऐं होती है।	3. इसमें ईंधन सीधा ही कार्बनडाई ऑक्साइड व पानी बनाता है।
4. इसमें एन्जाइम्स का नियंत्रण होता है।	4. इसमें एन्जाइम्स का नियंत्रण नहीं होता है।
5. इसमें ऊर्जा ATP के रूप में संचित रहती है।	5. इसमें ऊर्जा, उष्मा व कभी–कभी प्रकाश के रूप में मुक्त होती है।

8.8.2 पादप श्वसन

पादपों में जन्तुओं के समान गैसीय विनिमय हेतु विशिष्ट अंग नहीं होते, बल्कि उनमें इस उद्देश्य हेतु रन्ध्र तथा वातरन्ध्र पाये जाते हैं। पादपों में गैस परिवहन बहुत कम होता है। अतः आदान–प्रदान की माँग बहुत कम होती है। इसके अतिरिक्त पादपों की अधिकांश कोशिकाओं की सतह वायु के सम्पर्क में होती है, अतः ऑक्सीजन उपलब्धता की कोई समस्या नहीं होती।

पादप कोशिकाऐं इस तरह से भोजन बनाती है कि ग्लूकोस अणु के अपचय से निकलने वाली संपूर्ण ऊर्जा, उष्मा के रूप में बाहर न निकल जाए। इसके लिए कोशिकीय श्वसन एक बहुचरणीय प्रक्रम होता है ताकि अधिकतम ऊर्जा को एटीपी (ATP) में परिवर्तित किया जा सके।

जीवों में दो प्रकार का कोशिकीय श्वसन पाया जाता है–

(1) अवायवीय श्वसन या अनॉक्सीश्वसन (Anaerobic respiration)

(2) वायवीय श्वसन या ऑक्सीश्वसन (Aerobic respiration)

(1) अवायवीय श्वसन

(Anaerobic respiration)

इस प्रकार के श्वसन में ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती है इस प्रकार का श्वसन यीस्ट (Yeast), जीवाणुओं, परजीवियों तथा कुछ निम्न स्तर के जंतुओं में होता है जिन्हें वायु मण्डल की स्वतंत्र ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है। इस प्रकार ऑक्सीजन की कमी अथवा अनुपस्थिति में ग्लूकोस, एथिल ऐल्कोहोल (Ethyl alcohol) अथवा लैक्टिक अम्ल (Lactic acid) में परिवर्तित हो जाता है और कम मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस क्रिया को शर्करा किण्वन (Sugar fermentation) भी कहते हैं।

(क) $C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2C_3H_6O_3 + \text{ऊर्जा}$

ग्लूकोस लेक्टिक अम्ल (पेशियों तथा जीवाणुओं द्वारा)

(ख) $C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2C_2H_5OH + 2CO_2 + \text{ऊर्जा}$

ग्लूकोस एथिल ऐल्कोहोल (यीस्ट द्वारा)

(2) वायवीय श्वसन

(Aerobic respiration)

इस प्रकार के श्वसन में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती हैं। इस प्रकार के श्वसन में वायुमण्डल की ऑक्सीजन की उपस्थिति में ग्लूकोस का अपघटन होता है जिसके फलस्वरूप कार्बनडाई ऑक्साइड, जल तथा अधिक मात्रा में ऊर्जा निकलती है।

इस प्रकार का श्वसन अधिकांश पादपों व जन्तुओं में पाया जाता है। इस प्रकार के श्वसन में पौधा अपने वातावरण से ऑक्सीजन लेता है और बदले में कार्बन डाई–ऑक्साइड छोड़ता है।

8.8.3 जीवों में श्वसन क्रिया

जंतुओं में पर्यावरण से ऑक्सीजन लेने और CO_2 के निकास के लिये विभिन्न अंगों का विकास हुआ। स्थलीय जन्तु वायुमंडल से O_2 लेते हैं (जैसे मनुष्य फुफ्फुस द्वारा) परन्तु जो जीव जल में रहते हैं जैसे मछली, ये जल में विलेय O_2 का श्वसन क्लोम (Gill) द्वारा अवशोषण करते हैं, क्योंकि जल में विलेय आक्सीजन की मात्रा वायु में O_2 की मात्रा की तुलना में बहुत कम है। इसलिये जलीय जीवों की श्वास दर स्थलीय जीवों की अपेक्षा द्रुत होती है।

एककोशिकीय जीव जैसे *अमीबा, पैरामिशियम* आदि कोशिका झिल्ली द्वारा विसरण (Diffusion) से गैस का आदान प्रदान करते है। इसी प्रकार पोरिफेरा जैसे– (Sponges), सिलेन्ट्रेटा जैसे– (Hydra) आदि जन्तुओं द्वारा नम देहभित्ति द्वारा गैस का आदान–प्रदान किया जाता है।

जैसे–जैसे जीवों का आकार बढ़ता गया, विशिष्टीकृत श्वसन अंगों की जरूरत पड़ी। इन सभी अंगों में एक रचना होती है। जो उस सतही क्षेत्रफल को बढ़ाती है। केंचुए में श्वसन तंत्र, अमीबा तथा हाइड्रा की तुलना में अधिक जटिल होता है। केंचुए की त्वचा से स्त्रावित श्लेष्मा बाह्य सतह को नम बनाये रखता है। इस नम सतह द्वारा O_2 व CO_2 गैसों का विनिमय होता है।

कीटों में श्वसन विशेष नलिकाओं द्वारा होता है। उदाहरण – तिलचट्टे (Cockroach)

क्र.सं.	अनॉक्सीश्वसन (Anaerobic Respiration) (अवायवीय)	ऑक्सीश्वसन (Aerobic Respiration) (वायवीय)
(1)	ऑक्सीजन (O_2) की अनुपस्थिति में	O_2 की उपस्थिति में होता है।
(2)	श्वसनीय पदार्थों का अपूर्ण आक्सीकरण होता है।	श्वसनीय पदार्थों का पूर्ण आक्सीकरण होता है।
(3)	कम ऊर्जा की प्राप्ति (2 ATP)	अधिक ऊर्जा की प्राप्ति (36–38 ATP) होती है।
(4)	अन्तिम उत्पाद कार्बनिक यौगिक जैसे – एल्कोहॉल	अन्तिम उत्पाद के रूप में CO_2 व जल होते हैं।
(5)	उदाहरण : निम्न पादपों, बैक्टीरिया, कवक में यह श्वसन पाया जाता है।	उदाहरण : उच्चतर पादपों तथा जीवों कें ऑक्सीश्वसन होता है।
(6)	$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2\,C_2H_5OH + 2\,CO_2 + 2ATP$ (ऊर्जा) ग्लुकोज → एथेनॉल + कार्बनडाईऑक्साइड +ऊर्जा	$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \rightarrow 6CO_2 + 6H_2O + ATP$ (ऊर्जा) ग्लुकोज → कार्बनडाईऑक्साइड + पानी + ऊर्जा + ऑक्सीजन

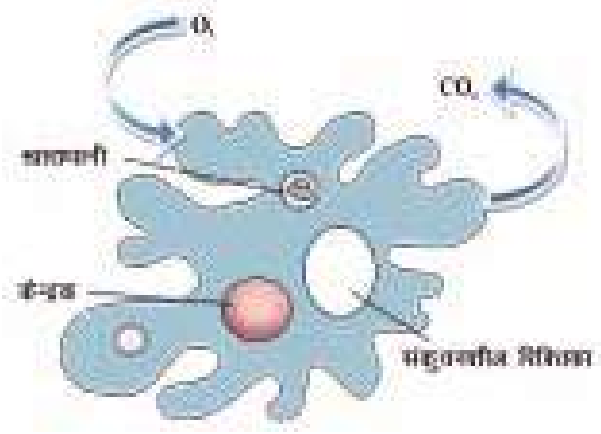

चित्र 8.7 : अमीबा में श्वसन

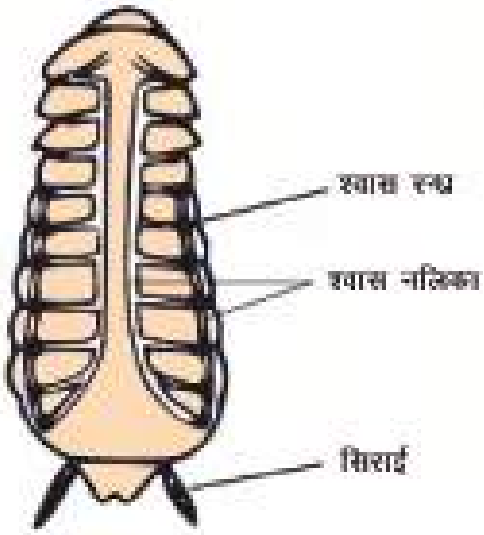

चित्र 8.9 : तिलचट्टे में श्वसन तंत्र

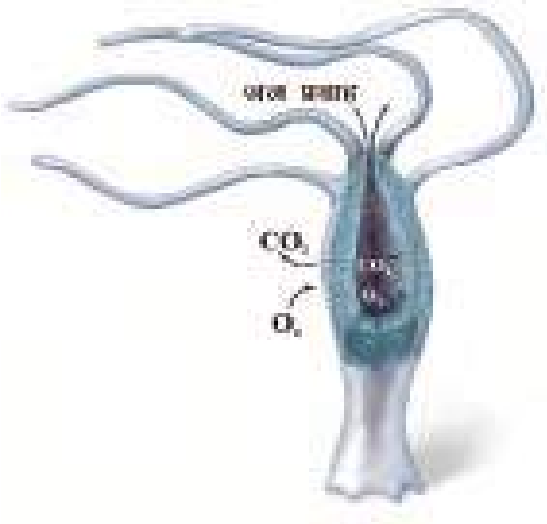

चित्र 8.8 : हाइड्रा में श्वसन

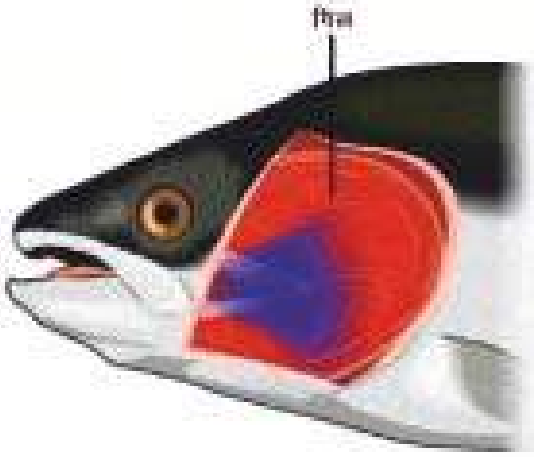

चित्र 8.10 : मछली में गिल द्वारा श्वसन

8.8.4 मानव में श्वसन

मानव में श्वसन के प्रमुख अंग निम्न हैं – नासिका या नासा मार्ग, ग्रसनी, वायु कंठ (लैरिंक्स), श्वासनली (Trachea) तथा फुफ्फुस में पाये जाने वाली श्वसनी (bronchi) श्वसनिका (bronchioles), अंतस्थ श्वसनिका (Terminal bronchiole) एवं कूपिका (Alveoli)।

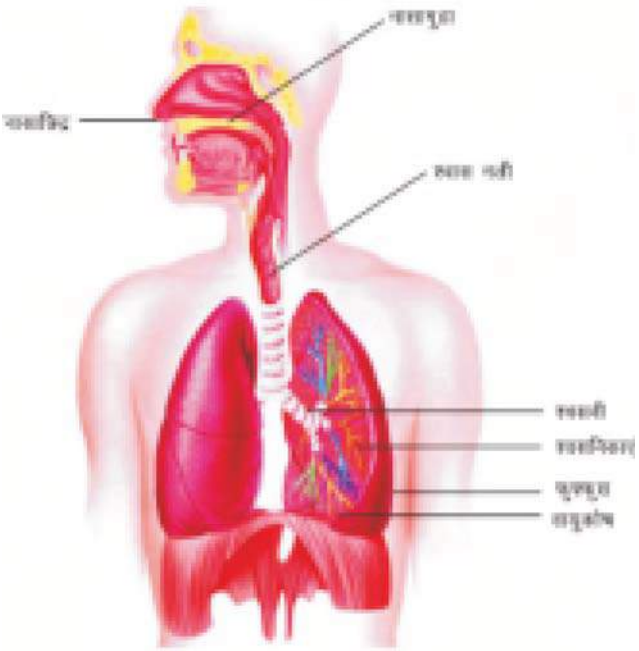

चित्र 8.11 : मानव श्वसन तंत्र

नासाछिद्र (Nostril) **तथा नासामार्ग** (Nasal passage) – मनुष्य में मुख पर एक जोड़ी नासाछिद्र होते हैं। नासाछिद्र के पीछे नासागुहा (Nasal chamber) पायी जाती है। नासागुहा व नासाछिद्रों की दीवार पर श्लेष्म ग्रंथियां पायी जाती है जिससे श्लेष्मा स्त्रावित होता है जिसके कारण मार्ग नम रहता है और सूक्ष्म जीव व धूल कण चिपक जाते हैं। नासागुहा नासामार्ग से वायु कंठ में खुलती है। नासामार्ग से अन्दर आने वाली वायु के तापमान का नियमन किया जाता है।

वायु कंठ तथा श्वासनली (Larynx and Trachea) – श्वसन मार्ग का वह भाग जो ग्रसनी (Pharynx) को श्वासनली (Trachea) से जोड़ता है वायुकंठ (Larynx) कहलाता है। इसका मुख्य कार्य ध्वनि उत्पादन करना होता है। इसके प्रवेश द्वार पर एपिग्लॉटिस (Epiglottis) पत्तीनुमा कपाट के रूप में व्यवस्थित होता है। कंठ के पीछे की ओर श्वासनली (Trachea) खुलती है। श्वासनली पर C-आकार के छल्ले पाये जाते हैं जो वायु ना होने पर श्वासनली को पिचकने से रोकते हैं।

श्वसनी तथा श्वसनीकाएं (Bronchi and Bronchioles) – श्वासनली ट्रेकिया के नीचे वक्षगुहा (Thoracic cavity) में जाकर दो भागों श्वसनियों या ब्रोंकाई में बंट जाती है। श्वसनी, श्वनीकाओं (Bronchioles) में विभाजित होती है। श्वसनिका विभाजित होकर फेफड़ों में वायुकोष्ठिका वाहिनियों (Alevolar ducts) का रूप लेते हैं। ये वाहिनियां छोटे–छोटे कूपिका या वायुकोष (Airsac or Alveoli) में खुलते हैं। वायुकोषों पर रक्त की नलिकाएं पायी जाती है जो ऑक्सीजन को पूरे शरीर में पहुंचाने का कार्य करती है। वायुकोष के कारण फुफ्फुस का क्षेत्रफल कई गुना बढ़ जाता है।

फेफड़े या फुफ्फुस (Lungs) – मनुष्य की वक्षगुहा में स्पंजी, गुलाबी थैलीनुमा एक जोड़ी फेफड़े होते हैं जो हृदय के पास फुफ्फुसीय गुहा (Pleural cavity) में स्थित होता है। प्लुरल गुहा के चारों ओर पतला आवरण होता है जिसे फुफ्फुसावरण कहते हैं। दायां फेफड़ा लम्बा तथा बायां छोटा होता है। वक्षीय गुहा के पसलियों के संकुचन व शिथिलन से आयतन बढ़ता व घटता है जिससे वायु फेफड़े में प्रवेश करती है और बाहर निकलती है।

डायफ्राम (Diaphragm) – वक्षीयगुहा का निचला फर्श एक गुंबदाकर पतले पट्टे द्वारा बंद रहता है जिसे डायफ्राम कहते हैं। उच्छवास (Exhalation) के समय डायफ्राम चपटा हो जाता है।

श्वसन क्रिया

(Breathing Mechanism in Human)

श्वसन क्रिया को दो भागों में बांटा जाता है।

(1) निः श्वसन (Inspiration)

(2) उच्छवसन (Expiration)

श्वसन वर्णक

हीमोग्लोबिन श्वसन वर्णक होता है जो RBC (लाल रक्त कणिकाएं) में उपस्थित होता है। यह श्वसन वर्णक ऑक्सीजन से बंधुता करके O_2 को पूरे शरीर की कोशिकाओं में पहुंचाता है।

8.9 परिसंचरण (Circulation)

8.9.1 अर्थ व आवश्यकता

जीवित जन्तुओं में अवशोषित पोषक पदार्थ, जल व अपशिष्ट उत्पादों को शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने की क्रिया को **परिसंचरण** कहते हैं। इससे सम्बन्धित तंत्र को **परिसंचरण तंत्र** कहते हैं।

परिसंचरण तंत्र में कुछ अंग, वाहिका एवं वाहिनिकाएं होती हैं। जिनमें एक तरल द्रव बहता है। इस तरल द्रव से ही भोज्य पदार्थ, ऑक्सीजन, जल, उत्सर्जी पदार्थ व दूसरे उपयोगी पदार्थ शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचती है। यह तरल द्रव मुख्यतया लसिका, रूधिर या जल होता है। इन्हीं पदार्थों से ही हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका को पोषण व ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे वह अपना कार्य करने में सक्षम होती है तथा शरीर सुचारू रूप से चलता है।

8.9.2 जन्तुओं में परिसंचरण का सतही ज्ञान

जन्तुओं में दो प्रकार का परिसंचरण तंत्र पाया जाता है–

(1) **खुला परिसंचरण तंत्र** – इस प्रकार के परिसंचरण तंत्र में रक्त या रूधिर आंशिक रूप में शरीर के कुछ भाग में वाहिनियों में प्रवाहित होता है और शेष भागों में उत्तकों के मध्य खुले स्थानों में फैल जाता है। इसलिए जन्तुओं की कोशिकायें तथा ऊतक रूधिर के सीधे सम्पर्क में रहती है। उदाहरण – तिलचट्टा, झींगा, घोंघा, सीपी आदि।

(2) **बंद परिसंचरण तंत्र** – इस प्रकार के परिसंचरण में रूधिर शरीर में वाहिका तथा वाहिनिकाओं में ही संचरित होता है; शरीर के विभिन्न अंगों तक पोषक पदार्थों को पहुंचाया तथा उत्सर्जी पदार्थों को वहां से लाया जाता है। उदाहरण – केंचुआ, मछली, मेंढक, पक्षी व मानव आदि।

8.9.3 तिलचट्टे में परिसंचरण

तिलचट्टे एवं अन्य कीटों में खुले परिसंचरण द्वारा पोषक पदार्थ, अपशिष्ट पदार्थ व हार्मोनों का परिवहन शरीर में हो जाता है किन्तु इस प्रकार के तंत्र के द्वारा गैसों का परिवहन नहीं होता। गैसों के परिवहन के लिए ट्रैकियल या श्वसन नलिकाओं का एक पृथक तंत्र होता है। तिलचट्टे में एक गुहा पायी जाती है जिसे रूधिर गुहा कहते हैं। यह दो पटों द्वारा तीन कोटरों में विभाजित रहती है। इन्हें परिहृदयी, परिआंतरांग तथा परितंत्रिकीय कोटर कहते हैं। परिहृदयी कोटर में एक 13 वेश्मीय नलिकायुक्त एवं स्पंदनशील हृदय होता है जिसमें रूधिर का प्रवाह पीछे से आगे की ओर होता है। तिलचट्टे में रूधिक वर्णक की अनुपस्थिति के कारण रंगहीन होता है। इसलिये यह गैसों के परिवहन में सहायक नहीं होता है। इस परिसंचरण तंत्र का प्रमुख कार्य भोज्य व अपशिष्ट पदार्थों का परिवहन होता है।

चित्र 8.12 : तिलचट्टे में खुला परिसंचरण तंत्र

8.9.4 केंचुए में परिसंचरण

केंचुए में दो प्रमुख रूधिर वाहिनियां पायी जाती है – पृष्ठ रूधिर वाहिनी (ऊपर की ओर) तथा अधर रूधिर वाहिनी (आहारनाल के नीचे) पृष्ठ रूधिर वाहिनी में रूधिर पीछे से आगे की ओर तथा अधर वाहिनी में रूधिर आगे के पीछे की ओर प्रवाहित होता है। अग्र सिरे के निकट यह दोनों वाहिनियां चार जोड़े नलिका सदृश्य हृदयों से जुड़ी रहती है और रूधिर परिवहन के पश्चात् पृष्ठ वाहिनों से पुनः हृदय में पहुंचती है। हृदय व पृष्ठ वाहिका में एकदिशीय कपाट होते हैं, जो रूधिर को विपरीत दिशा में जाने से रोकते हैं। अधर वाहिनी से निकली शाखाएं, पतली महीन केशिकाओं में विभक्त होकर शरीर में फैली रहती है। इसकी भित्ति केवल एककोशिका स्तर की होती है जिसके कारण पोषक व अन्य पदार्थ विसरित होकर ऊतक द्रव के द्वारा कोशिकाओं तक पहुंच जाते हैं।

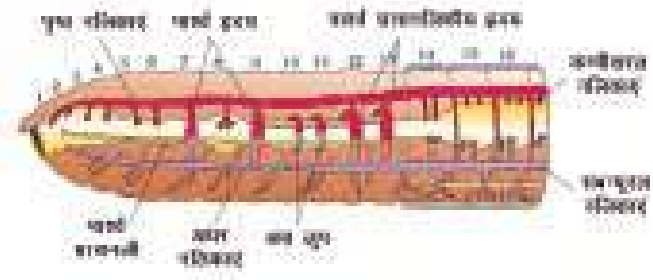

चित्र 8.13 : केंचुए में बंद परिसंचरण तंत्र

8.9.5 मानव में परिसंचरण तंत्र

परिसंचरण तंत्र को दो तंत्रो में विभाजित किया जाता है (i) रूधिर दोहरा परिसचंरण तंत्र–इस तंत्र में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है (क) रूधिर (ख) हृदय (ग) रूधिर वाहनियाँ

(ii) लसीका तंत्र

(क) रूधिर (Blood)

रूधिर एक तरल संयोजी ऊतक है इसमें एक तरल द्रव्य उपस्थित होता है जिसे **प्लाज्मा** कहते हैं। रूधिर में लगभग 55% हल्के पीले रंग का द्रव्य प्लाज्मा होता है। प्लाज्मा में 92% जल व शेष 8% अन्य पदार्थ होते हैं। इसमें कई कार्बनिक पदार्थ जैसे ग्लुकोज, अमीनो अम्ल, वसा अम्ल व ऑक्सीजन तथा अन्य घुलित गैसें पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त ग्लोब्यूलिन प्रतिरक्षी प्रोटीन, थक्का जमने में सहायक फाइब्रिनोजन व प्रोथोम्बिन भी प्लाज्मा में पाये जाते हैं। प्लाज्मा के अलावा तीन प्रकार की रूधिर कणिकाएं पायी जाती हैं– (1) लाल रूधिर कणिका (Red Blood Corpusle or RBC) (2) श्वेत रूधिर कणिका (White Blood Corpusle or WBC) (3) रूधिर बिम्बाणु प्लेटलेट्स। (Blood Platelet or Thrombocytes)

(1) लाल रूधिर कणिका

(Red blood corpuscles or RBC)

ये कणिकायें हल्के पीले रंग की होती है तथा इनका आकार अण्डाकार या गोल होता है। बहुत अधिक संख्या में उपस्थिति एवं आक्सीहीमोग्लोबिन के कारण इनका रंग लाल दिखाई देता है। इनका जीवनकाल लगभग 120 दिन का होता है, केन्द्रक का अभाव होता है। RBC में एक महत्वपूर्ण लौह यौगिक पाया जाता है, जिसे हीमोग्लोबिन कहते हैं जिसके द्वारा ऑक्सीजन का विनिमय होता है। RBC की कमी से रक्त क्षीणता (Anaemia) रोग हो जाता है।

(2) श्वेत रक्त कणिका (White blood corpuscles or WBC) – इसकी संख्या शरीर में RBC से कम होती है परन्तु आकार बड़ा होता है। ये आकार में अनियमित होती है। इसमें केन्द्रक पाया जाता है। WBC में हीमोग्लोबिन नहीं पाया जाता है। इस कारण यह रंगहीन होती है। कई श्वेत रक्त कणिकाएं रूधिर वाहिनियों की दीवारों के साथ–साथ रूधिर प्रवाह के विपरीत अमीबीय गति करती है। जब कभी कोई जीवाणु या बाह्य हानिकारक पदार्थ शरीर में प्रवेश करते हैं तो यह उन पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर बाहर निकाल देती है। इस प्रकार ये शरीर की रोगाणुओं से सुरक्षा करके हमारे शरीर में प्रतिरक्षा तंत्र को विकसित करती है।

(3) रूधिर बिम्बाणु – इन कणिकाओं को थ्रोम्बोसाइट भी कहते हैं। ये लाल व श्वेत रूधिर कणिकाओं से आकृति में छोटी होती है एवं संख्या में लाल रूधिर कणिकाओं से कम होती है। इनका मुख्य कार्य रक्त का थक्का बनाकर रक्तस्त्राव के मार्ग को अवरूद्ध करना होता है। इनमें केन्द्रक नहीं पाया जाता है।

(ख) हृदय – एक पेशीय अंग

मनुष्य का हृदय लम्बा व शंक्वाकार होता है। जो वक्षीय गुहा में दोनों फेफड़ों या फुफ्फुस के मध्य परन्तु थोड़ा बायीं ओर उपस्थित होता है। हृदय चार कोष्ठों का बना होता है। ऊपर की ओर बायां तथा दायां आलिन्द तथा नीचे की ओर बायां व दायां निलय होता है। ऑक्सीजन प्रचुर रूधिर फुफ्फुस से हृदय में बायीं ओर स्थित कोष्ठ (बायां आलिन्द व निलय) में लाया जाता है तथा ऑक्सीजन रहित रूधिर को दायां आलिन्द व निलय में लाया जाता है। आलिन्द की अपेक्षा निलय की पेशीय भित्ति मोटी होती है क्योंकि निलय को पूरे शरीर में रूधिर भेजना होता है। जब आलिन्द या निलय संकुचित होता है तो वाल्व उल्टी दिशा में रूधिर प्रवाह को रोकना सुनिश्चित करते हैं। दोनों आलिन्दों के बीच एक पट पाया जाता है जिसे **अर्न्तआलिन्दीय पट** (Inter auricular septum) कहते हैं। इसी प्रकार दोनों निलयों के बीच का पट **अन्तर्निलयी पट** (Inter ventricular septum) कहलाता है।

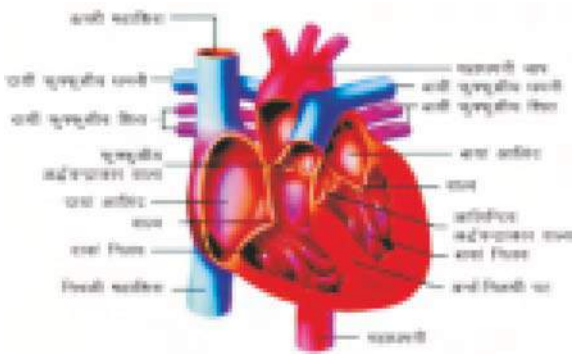

चित्र 8.14 : मानव हृदय की संरचना

8.9.6 हृदय की क्रियाविधि

हृदय का कार्य शरीर के विभिन्न भागों को रूधिर पम्प करना है। यह कार्य हृदय के संकुचन तथा शिथिलन के द्वारा होता है। हृदय के बाएं आलिन्द में ऑक्सीजन युक्त रक्त फुफ्फुस से फुफ्फसीय शिराओं द्वारा आता है। शरीर के विभिन्न भागों से शिराओं व केशिकायों द्वारा ऑक्सीजन रहित रक्त हृदय के दाएं आलिन्द में आ जाता है। अब दोनों आलिन्द एक साथ सिकुड़ते हैं जिसे बाएं आलिन्द से ऑक्सीजन युक्त रूधिर बाएं निलय में तथा दाएं आलिन्द से ऑक्सीजन रहित रूधिर दाएं निलय में आ जाता है। इसके पश्चात् निलय एक साथ सिकुड़ते

हैं, इनके सिकुड़ने से रूधिर पर दाब पड़ता है जिससे आलिन्द और निलय के बीच के कपाट (वाल्व) बन्द हो जाते हैं और रूधिर पुनः आलिन्द में नहीं जा सकता। इस दाब के कारण बाएं निलय से जुड़ी महाधमनी का महाधमनी कपाट खुल जाता है और रूधिर महाधमनी में आ जाता है जहां से इसे विभिन्न धमनियों द्वारा शरीर के सभी भागों तक पहुंचा दिया जाता है। दाएं निलय के सिकुड़ने से रूधिर फुफ्फुसी धमनियों द्वारा फुफ्फुस में चला जाता है। जहां यह कार्बनडाईऑक्साइड को मुक्त कर ऑक्सीजनित होकर पुनः बायीं आलिन्द में प्रवेश करता है। इस प्रकार हृदय में दो चक्र पूर्ण होता है। अतः इसे **दोहरा संवहन** या **दोहरा परिसंचरण** कहते हैं।

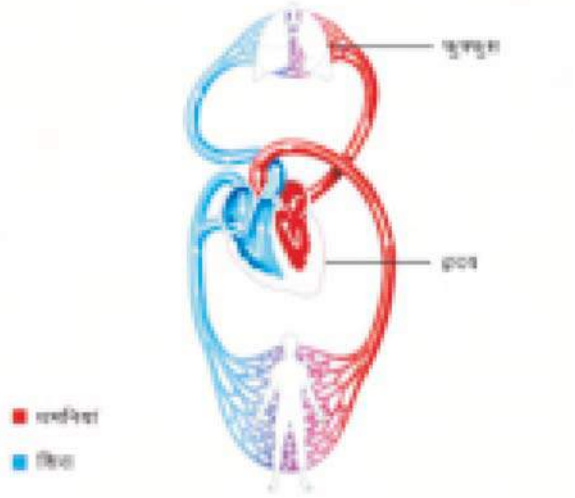

चित्र 8.15 : दोहरा परिसंचरण तंत्र

(ग) रूधिर वाहिनियां

(1) **धमनियां** – वे वाहिनियां जो रूधिर को हृदय से शरीर के विभिन्न अंगों तक ले जाती है, **धमनियां** कहलाती हैं। इसकी दीवार मोटी व लचीली होती है। क्योंकि इसमें रूधिर बहुत दाब से बहता है। इसमें सामान्यतः शुद्ध या ऑक्सीजनित रूधिर प्रवाहित होता है। फुफ्फुसीय धमनियों में अशुद्ध रक्त प्रवाहित होता है।

(2) **शिराएं** – ये रूधिर को शरीर के विभिन्न भागों से एकत्रित करके हृदय में लाती है, **शिराएं** कहलाती है। इनकी दीवारें पतली एवं पिचकने वाली होती है। शिराओं की गुहा चौड़ी होती है क्योंकि इसमें रूधिर का दाब कम होता है। इसमें सामान्यतः अशुद्ध या ऑक्सीजन रहित रूधिर प्रवाहित होता है। फुफ्फुसीय शिराओं में शुद्ध या ऑक्सीजनित रक्त प्रवाहित होता है।

(3) **केशिकाएँ** (Capillaries) : सबसे पतली वाहिनियां जो धमनी और शिरा को जोड़ने का कार्य करती है।

8.9.7 रूधिर दाब (Blood pressure)

रूधिर वाहिकाओं की भित्ति के विरूद्ध जो दाब लगता है उसे **रक्तदाब** कहते हैं। यह दाब शिराओं की अपेक्षा धमनियों में बहुत अधिक होता है। हृदय के संकुचन से जो दाब उत्पन्न होता है वह दाब रूधिर को धमनियों में आगे बढ़ाता है। धमनी के अन्दर रूधिर का दाब निलय प्रकुंचन (संकुचन) के दौरान **प्रकुंचन दाब** तथा निलय अनुशिथिलन (शिथिलन) के दौरान धमनी के अन्दर का दाब **अनुशिथिलन दाब** कहलाता है। सामान्य मानव शरीर में प्रकुंचन दाब 120 mm तथा अनुशिथिलन दाब लगभग 80 mm होता है।

(ii) लसिका तंत्र (Lymph System)

रूधिर जब केशिकाओं में प्रवाहित होता है तो उसके छन कर जो द्रव्य बनता है लसिका (Lymph) कहलाता है। लसिका का संगठन प्लाज्मा के लगभग समान होता है पर पदार्थों की सान्द्रता भिन्न होती है। लसिका द्रव अन्तर कोशिकिय स्थलों में परिसंचरण करता है। शरीर में लसिका केशिकायें, व दो बड़ी लसिकाय पायी जाती है।

8.10 पादपों में संवहन
(Conduction in plants)

हरे पादपों में प्रकाश संश्लेषण द्वारा खाद्य पदार्थ बनते हैं। प्रकाशसंश्लेषण की इस क्रिया में पेड़ पौधों को सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा मिलती है, वायुमण्डल से कार्बन डाई–ऑक्साइड प्राप्त होती है तथा जल जड़ों के माध्यम से प्राप्त होता है। आओ हम अध्ययन करें कि पेड़ पौधों को ये सभी पदार्थ कैसे प्राप्त होते है ? प्रकाशसंश्लेषण का प्रमुख अंग पर्ण है किंतु ये सभी पदार्थ पर्ण तक किस प्रकार पहुँचते हैं ?

चित्र 8.16 : पादपों के प्रमुख अंग व कार्य

हमारे चारों ओर पाये जाने वाले पौधे चाहे वह शाक हो या झाड़ी या वृक्ष, इन सबके स्वभाव में विभिन्नता होते हुए भी इनके प्रमुख भागों में मूलतः समानता मिलती है किसी भी पुष्पी पौधे का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि पादप में जड़, तना, शाखाएँ, पत्तियां, पुष्प, फल एवं बीज मिलते हैं।

जन्तुओं की तुलना में पौधों में अंगों की संख्या कम मिलती है। पर्ण, तना एवं जड़ पौधे के कायिक अंग हैं जो कि प्रकाश–संश्लेषण, संवहन, खाद्य संग्रह आदि उपापचयी कार्य करते हैं।

8.10.1 पर्ण (Leaf)

पर्ण का प्रमुख कार्य प्रकाश संश्लेषण एवं खाद्य–संग्रह है। यह तने एवं शाखाओं पर इस प्रकार लगी रहती है कि दिन में सूर्य का प्रकाश पौधों की सभी पर्णों पर पड़े। पर्ण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कैसे करते हैं। इसके लिये पर्ण की रचना संक्षिप्त रूप से समझना आवश्यक है। पर्ण की ऊपरी अधिचर्म के नीचे सजीव मृदुत्तक कोशिकाऐं (Parenchyma cells) पायी जाती हैं। इन कोशिकाओं में पर्णहरित नामक वर्णक पाया जाता है। इन कोशिकाओं के मध्य में अन्तराकोशिकीय स्थल (Intercellular space) होते हैं जो कि परस्पर सम्पर्कित रहते हैं, जिससे विभिन्न गैसों (O_2 एवं CO_2) का विनिमय तथा जल वाष्प का उत्सर्जन एवं गैसों का परिवहन पर्ण की सभी कोशिकाओं तक हो सके।

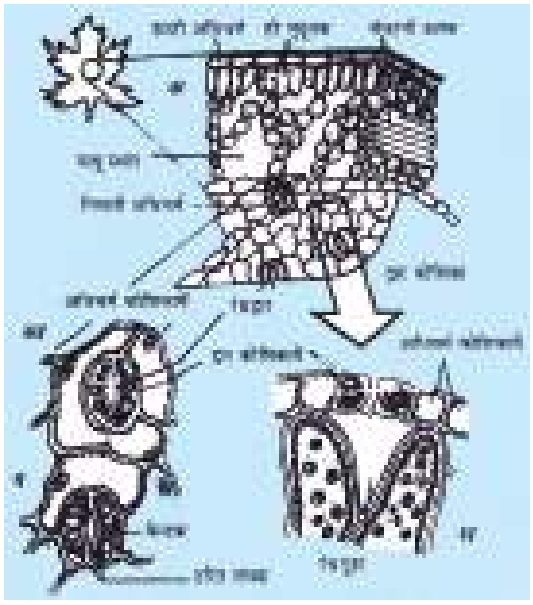

चित्र 8.17 : (क) पर्ण की आंतरिक संरचना (निचली अधिचर्म को आगे की ओर पलट दिया गया है) हरे मुदूतक प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करते है। अधिचर्म में पाये जाने वाले रंध्रों पर ध्यान दीजिए। (ख) खुला रंध्र। (ग) बंद रंध्र। (घ) रंध्र (अनुप्रस्थ काट)

पर्ण में शिराओं का जाल बिछा होता है जिनमें प्रमुख संवहनी ऊतक जायलम (Xylem) एवं फ्लोएम (Phloem) होते हैं। यह ऊतक तरल खाद्य पदार्थ एवं जल के संवहन के लिए एक नलिका जाल बनाते हैं। यह जायलम एवं फ्लोएम, तने के जायलम एवं फ्लोएम से जुड़े रहते हैं। जायलम का मुख्य कार्य जड़ द्वारा अवशोषित जल एवं खनिज लवणों को पौधे के प्रत्येक भाग एवं पत्तियों तक पहुँचाना है। फ्लोएम का मुख्य कार्य पत्तियों में बने कार्बनिक खाद्य पदार्थ को पौधे के प्रत्येक भाग एवं जड़ तक पहुँचाना है।

चित्र 8.18 : पर्ण में शिराजाल

जड़ से पत्ती तक का जाइलम एवं फ्लोएम का संवहन तंत्र एक नली के रूप में क्रमशः जल एवं खनिज लवण पहुँचाता है, एवं खाद्य पदार्थों का संवहन करता है।

सामान्यतः पर्ण की निचली अधिचर्म पर अनेक छोटे–छोटे छिद्र पाये जाते हैं जिन्हें रंध्र (Stomata) कहते हैं। इन रंध्रों द्वार पर्ण की मृदूतक कोशिकाओं का सम्पर्क बाह्य वातावरण से बना रहता है। रंध्र चारों ओर से दो द्वारा कोशिकाओं (Guard cells) द्वारा घिरा रहता है। ये कोशिकाएँ पास की कोशिकाओं से जल अवशोषित कर फैलती है और रंध्र खुल जाते हैं और वायु तथा कार्बन डाई–ऑक्साइड पर्ण में प्रवेश कर जाती हैं। जल की हानि होने पर द्वार कोशिकाएँ संकुचित होकर रंध्र को बन्द कर देती है।

इस प्रकार रंध्रों का प्रमुख कार्य ऑक्सीजन एवं कार्बन डाई–ऑक्साइड का विनिमय है। पर्ण का दूसरा प्रमुख कार्य जल को जल वाष्प के रूप में रंध्रों द्वारा निकालना है।

वाष्पोत्सर्जन (Transpiration)

पादप के हरे वायवीय भागों में उपस्थित रन्ध्रों द्वारा जल

का जलवाष्प के रूप में वातावरण में निकलना या उत्सर्जित होना वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) कहलाता है।

वाष्पोत्सर्जन को एक साधारण प्रयोग द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। हम एक पौधा लगा गमला लेंगे उसे काँच की प्लेट पर रखकर एक पॉलीथीन की थैली से ढक देंगे। पॉलीथीन के मुख पर वैसलीन लगा देंगे जिससे वायु एवं वाष्प का आदान–प्रदान न हो सके। कुछ समय बाद हमें पॉलीथीन की भीतरी सतह पर जल की बूंदे दिखाई देंगी। ये बूंदें पौधे के रंध्रों से वाष्प के रूप में निकलती हैं एवं पॉलीथीन की ठंडी सतह से टकराकर पुनः बूंदों में परिवर्तित हो जाती हैं।

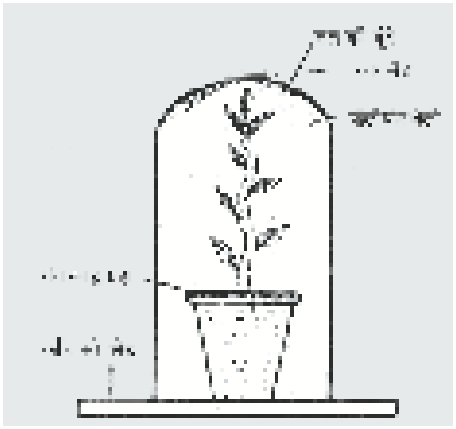

चित्र 8.19: वाष्पोत्सर्जन का प्रदर्शन

प्रकाश के अभाव में जब रंध्र बन्द होते हैं तो वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है। यदि वाष्पोत्सर्जन की दर अनुपात से अधिक हो जाये तो पौधा मुरझा जायेगा।

वाष्पोत्सर्जन के कारण पौधों के आसपास का वातावरण नमीयुक्त रहता है। यहीं कारण है कि गर्मी की ऋतु में वृक्ष के नीचे शीतलता का अनुभव होता है। वाष्पोत्सर्जन भूमि से जल अवशोषण करने में भी सहायक होता है।

8.10.2 स्तम्भ (Stem)

जल एवं खनिज लवणों का संवहन एवं खाद्य पदार्थों को पौधों के विभिन्न भागों तक पहुँचाने का मुख्य मार्ग तना या स्तम्भ है। इसके संवहन ऊत्तक पर्णों के संवहन ऊत्तकों के साथ निरन्तरता बनाऐ रखते हैं।

जायलम (Xylem)

जायलम एक जटिल प्रकार का ऊतक है। इसमें जल एवं घुलित लवणों के संवहन के लिए वाहिकाऐं एवं वाहिनिकाऐं (Vessels and tracheids) पायी जाती है। ये लम्बी, मोटी भित्तियुक्त, मृत कोशिकाएँ हैं। इनकी भित्ति पर अनेक गर्त (Pits) मिलते हैं जिनके द्वारा जल एक से दूसरी वाहिनिकीय तत्व में जा सकता है।

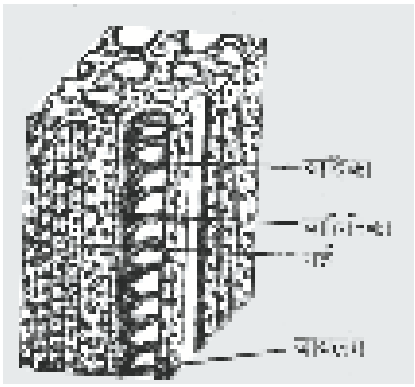

चित्र 8.20 : जायलम की संरचना

फ्लोएम (Pholem)

प्रकाशसंश्लेषण द्वारा निर्मित खाद्य तरल रूप में फ्लोएम के द्वारा पौधों के विभिन्न भागों में संवहित होता है। इस संवहन के लिए विशिष्ट **चालनी नलिका** (Sieve tube) होती हैं। चालनी तत्वों के बीच तरल खाद्य पदार्थ का संवहन सूक्ष्म छिद्रों द्वारा होता है। इन कोशिकाओं में केन्द्रक नहीं होता है।

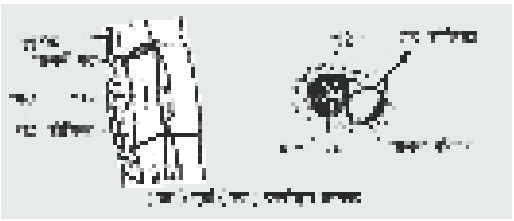

चित्र 8.21 : (क) एवं (ख) फ्लोएम ऊतक

चालनी नलिकाओं से सटी हुई मृदूतक कोशिकाएँ पायी जाती हैं जिन्हें **सहकोशिकाएँ** (Companion cells) कहते हैं।

तरल खाद्य पदार्थों का संवहन फ्लोएम द्वारा होता है–इसे एक सरल प्रयोग द्वारा समझा जा सकता है।

प्रयोग–गमले में लगा एक पौधा लीजिये। इसके मुख्य तने पर मिट्टी की सतह से लगभग 15 से.मी. ऊपर एक इन्च चौड़ी पट्टी या वलय के रूप में इसकी छाल को खुरच दीजिये जिससे इस भाग की छाल, कोमल वल्कुट एवं फ्लोएम बाहर निकल जाये। भीतर का भाग जायलम है। जायलम द्वारा जल का संवहन होता रहेगा।

पर्णों में बना खाद्य छीले हुए भाग में फ्लोएम के न होने के कारण नीचे तक नहीं जा सकेगा एवं छीले हुए भाग के ऊपर भाग में इकट्ठा होने लगेगा फलस्वरूप वह भाग फूल जायेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि फ्लोएम ही तरल खाद्य पदार्थों का संवहन करते हैं।

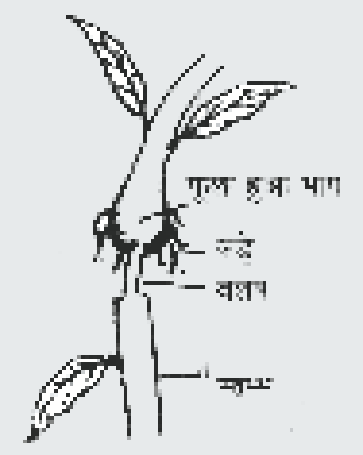

चित्र 8.22 तरल खाद्य का संवहन फ्लोएम द्वारा होता है

8.10.3 जड़ (Root)

एक सामान्य पौधे (जैसे–सरसों का पौधा) को जड़ सहित उखाड़ने पर हम देखते हैं कि इसमें एक प्रमुख जड़ होती है जिसे **प्राथमिक मूल** कहते हैं। इससे **द्वितीयक** एवं **तृतीयक** जड़ें निकलती हैं। इस प्रकार पौधे की प्रमुख जड़ एवं इसकी शाखाएँ पौधे का **मूसला तंत्र** बनाती है। उदाहरण– सरसों का पौधा।

एक बीजपत्री पौधे जैसे–गेहूं, जौ, बाजरा आदि में प्राथमिक मूल शीघ्र नष्ट हो जाती है और स्तम्भ के आधार भाग से कई छोटी रेशेदार जड़ें निकलती हैं, ऐसे–मूलतंत्र को **अपस्थानिक मूलतंत्र** कहते हैं।

चित्र 8.23 (क) : मूसला मूल तन्त्र
(ख) : अपस्थानिक मूल तंत्र

मूल का प्रमुख कार्य भूमि से जल एवं घुलित खनिज लवणों का अवशोषण करना है। इसलिए जड़ें भूमि में नमी एवं भूमि जल की ओर वृद्धि करती है।

भूमि से अवशोषित जल संवहन तंत्र द्वारा तने के संवहनी ऊतकों तक पहुँचता है एवं पर्ण तक भी पहुँचता रहता है।

हम अध्ययन कर चुके हैं कि प्रकाश संश्लेषण में निर्मित खाद्य तरल रूप में फ्लोएम द्वारा पादप के विभिन्न अंगों तक पहुँचता है। यह तभी सम्भव है जब कोशिकी झिल्लियों में चयनात्मक अर्द्ध पारगम्यता (Selective semipermeability) पायी जाये। झिल्लियों में से विलयन के रूप में पदार्थों का अवशोषण एवं संवहन दो प्रकार की क्रियाओं द्वारा होता है– (i) **निष्क्रिय अवशोषण** एवं (ii) **सक्रिय अवशोषण**; निष्क्रिय अवशोषण में कई भौतिक क्रियाएँ जैसे–विसरण (Diffusion) परासरण (Osmosis), केशिकात्व (Capillarity), अन्तःशोषण (Imbibition), आदि सहायक है।

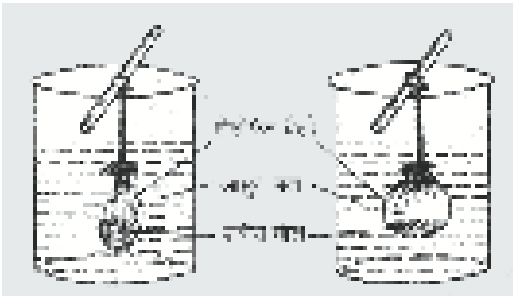

चित्र 8.24 : सेलोफेन अर्ध पारगम्य झिल्ली में से परासरण

सेलोफेन (Cellophane) की एक छोटी थैली लीजिये। सेलोफेन अर्द्ध पारगम्य होता है। इस थैली में 2% ग्लूकोस का विलयन भरिये। इस थैली के मुख को धागे से बाँधकर बन्द कर दीजिये एवं इसे बीकर में भरे आसुत जल में डुबो दीजिये। कुछ समय बाद आप देखेंगे कि थैली फूल गई है।

यह इसलिए हुआ कि बीकर के जल की सान्द्रता 100% है जबकि थैली की सान्द्रता 98 प्रतिशत है (2 प्रतिशत शर्करा है एवं 98 प्रतिशत जल है)। जल का विसरण अधिक सांद्रता से कम सांद्रता की ओर होने से बीकर का जल थैली में विसरित होगा, जिससे थैली फूल जायेगी। थैली में जल भरने की यह प्रक्रिया एक दाब के परिणामस्वरूप हुई। इसे **परासरण दाब (Osmotic pressure)** कहते हैं।

इसी प्रकार यदि किशमिश को पानी भरे कटोरे में डालें तो वह परासरण के कारण फूल जायेगी।

कोशिका, परासरण द्वारा जल का अवशोषण करती है। यदि किसी पादप या जन्तु कोशिका को आसुत जल में रखें तो कोशिका रस की सान्द्रता आसुत जल की तुलना में अधिक होने से कोशिका में जल के अणु प्रवेश करेंगे। जिससे कोशिका झिल्ली फैलेगी किन्तु साथ ही पुनः स्वाभाविक स्थिति में आने के लिए भीतर की ओर दाब डालेगी। इसे **भित्ति दाब** कहते हैं। परासरण दाब के अधिक होने के कारण जल कोशिका में जाता जायेगा एवं कोशिका फूलती जायेगी एवं **दृढ़** या **स्फीत** (Turgid) हो जायेगी। परासरण द्वारा कोशिका में जल का प्रवेश **अन्तः परासरण (Endosmosis)** कहलाता है।

कोशिका की पूर्ण स्फीत (Turgid) अवस्था, कोशिका के आकार को बनाये रखती है। पर्ण गूदेदार एवं रसदार फल, जैसे–आम एवं टमाटर की स्वस्थ प्रकृति इनकी कोशिकाओं के पूर्ण स्फीत होने के कारण ही होती है।

(iii) केशिकात्व (Capillarity) – काँच की एक पतली नली के एक सिरे को बीकर से भरे जल में डुबोया जाये तो नलिका में जल स्वयं ही कुछ ऊँचाई तक चढ़ जायेगा। किसी तरल पदार्थ के स्वयं ही रिक्त स्थान में प्रवेश को केशिकात्व (Capillarity) कहते हैं। यह भौतिक बल भी अवशोषण एवं परिवहन में सहायक हैं।

(iv) अन्तः शोषण (Imbibition) – पदार्थ एवं द्रव के अणुओं के परस्पर आकर्षण का कारण अन्तःशोषण होता है। यह प्रक्रिया जलरागी कॉलोइडों के कारण होती हैं। पादप की कोशिका भित्ति एवं बीजों के कठोर आवरण में भी जल का अवशोषण इस क्रिया द्वारा होता है। जल में रखने पर बीजों व लकड़ी का फूलना इसके प्रमुख उदाहरण है।

जीवद्रव्यकुंचन (Plasmolysis) – अब एक दूसरी स्थिति का अध्ययन करते हैं यदि एक कोशिका को एक ऐसे घोल में रखें जिसकी सान्द्रता कोशिका–रस से अधिक हो तो क्या होगा? कोशिका–रस से जल बाह्य घोल में आने लगेगा और कोशिका सिकुड़ने लगेगी। कोशिका भित्ति एक निश्चित सीमा तक ही सिकुड़ पायेगी; इसके बाद जीव द्रव्यक कोशिका भित्ति से पृथक हो एक तरफ संकुचित गोलाकार या अण्डाकार रूप में दिखायी देगी। इस क्रिया को **जीवद्रव्य कुंचन (Plasmolysis)** कहते हैं। कोशिका में जलका बाहर की ओर परासरण **बाह्य परासरण (Exosmosis)** कहलाता है।

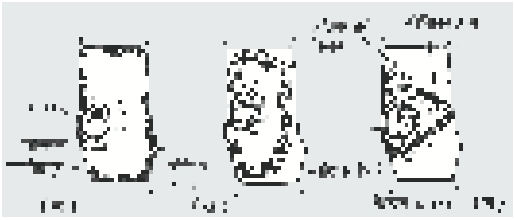

चित्र 8.25 : पादप कोशिकाओं में जीवद्रव्यकुंचन

मृदा से जल–अवशोषण (Absorption of water from soil)

मृदा के कणों के मध्य के स्थलों (छिद्रों) में वायु व जल होता है। इसे **केशिका–जल (Capillary water)** कहते हैं। पौधों की जड़ें इसी जल का अवशोषण करती हैं। मूल के मूल–रोम क्षेत्र द्वारा प्रमुखतया जल का अवशोषण किया जाता है। मृदा के केशिका जल में खनिज लवण घुले रहते हैं, अतः यह एक प्रकार का तनु विलयन होता है। मूल रोम कोशिका का कोशिका रस, इस विलयन की तुलना में अधिक सान्द्र होता है। अतः परासरण द्वारा

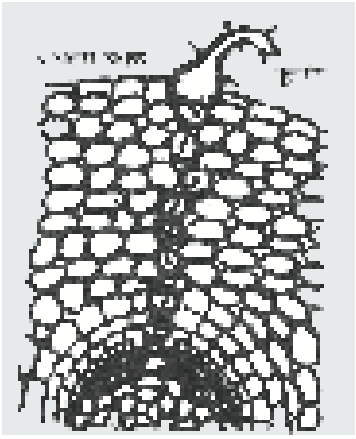

चित्र 8.26 : मूल रोम से मूल के जायलम तक का जल पथ

भूमि से जल, मूल रोम कोशिका में प्रवेश कर जाता है। मूल रोम का कोशिका रस पास की कोशिका के रस की तुलना में तनु हो जाता है और जल परासरण द्वारा अगली कोशिका में चला जाता है। इस प्रकार जायलम की वाहिकाओं से वल्कुट की कोशिकाओं तथा मूल रोम तक दाब प्रवणता (Pressure gradient) बन जाती है। इस प्रवणता के कारण भूमि से जल एवं घुलित खनिज लवण, मूल रोम से निरन्तर मूल के जायलम ऊतक तक पहुँचता रहता है।

मूल रोम का परासरण दाब, मृदा विलयन के परासरण दाब से कम हो तो परासरण के सिद्धान्त के अनुसार, बाह्य परासरण होना चाहिये। ऐसी परिस्थितियों में भी पादप मूल रोम में जल अवशोषण कर सकता है। इस अवशोषण के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो कि ATP अणु के रूप में कोशिका को उपलब्ध रहती है। इस प्रकार के अवशोषण को सक्रिय अवशोषण (Active absorption) कहते हैं।

मूल दाब (Root Pressure)

सक्रिय जल अवशोषण के कारण मृदा से जल मूल के जायलम में पहुँचता है। इस जल अवशोषण के कारण मूल की कोशिकाएँ स्फीत (Turgid) हो जाती है और जायलम में पहुँचने वाला जल कुछ ऊँचाई तक ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। मूलों में पाये जाना वाला यह धनात्मक दाब, मूल दाब (Root pressure) कहलाता है। यह एक सक्रिय दाब है जो कि कुछ शाकीय पौधों के जायलम में जल को ऊपर की ओर धकेलता है। यह एक जैव क्रिया (Vital process)

है।

चित्र 8.27 : मूलदाब प्रदर्शन

मूल दाब समझने के लिए हम एक सरल प्रयोग करेंगे। हम एक गमले में लगा स्वस्थ पौधा लेंगे। तने को मिट्टी की सतह से लगभग 7–8 सेमी ऊपर आड़ा काटेंगे। गमले में पानी देंगे। अब कटे भाग पर रबर की नली की सहायता से एक कांच की नलिका जोड़ेंगे–नलिका में थोड़ा–सा जल भरेंगे। जल–स्तर को चिन्हित कर देंगे। सारे उपकरण को मोम की सहायता से वायुरोधीh बना देंगे। हम देखेंगे कि कुछ समय पश्चात् काँच की नली में जल स्तर बढ़ने लगता है। यह मूल दाब के कारण होता है।

मूल दाब इतना नहीं होता कि वह 300 मीटर ऊँचे या इससे भी ऊँचे वृक्षों में जल को पर्णों तक पहुँचा सके। अब प्रश्न यह उठता है कि ऊँचे वृक्षों में जल पर्ण तक कैसे पहुँचता है? यह वाष्पोत्सर्जन–संसंजन तनाव सिद्धान्त द्वारा समझा जा सकता है।

वाष्पोत्सर्जन–संसंजन–तनाववाद

यह तीन प्रमुख कारकों पर आधारित है– (1) जायलम वाहिकाओं में जल निरन्तर, अखंडित स्तम्भ के रूप में विद्यमान होता है। (2) जल अणुओं में परस्पर दृढ़ आकर्षण होने से यह जल अणु संसंजित होकर, जल के स्तम्भ की निरंतरता को बनाये रखते हैं। (3) पर्ण में, जल स्तम्भ का ऊपरी भाग वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमंडल में निकलता रहता है। इस कारण जल स्तम्भ पर ऊपर से एक खिंचाव या तनाव बना रहता है। इस खिंचाव के कारण सम्पूर्ण जल स्तम्भ ऊपर की ओर खिंचा चला जाता है।

8.11 उत्सर्जन (Excretion)

जीवों में अपशिष्ट पदार्थ (Waste material) तथा विषैले पदार्थों को बाहर निकालने की क्रियाविधि **उत्सर्जन** कहलाती है। वे अंग जो उत्सर्जन क्रिया में भाग लेते हैं **उत्सर्जी अंग** कहते हैं।

8.11.1 उत्सर्जन की आवश्यकता

सभी जीवों में उपापचयी क्रिया (Metabolic Activity) देखने को मिलती है जो पहली अपघटनी या अपचयी (Catabolic) तथा दूसरी उपचयी या संश्लेषी क्रियाएं (Anabolic activity)। उपापचय में होने वाली अनेक रासायनिक क्रियाओं में ऐसे अनावश्यक उत्पादों जैसे यूरिया, यूरिक एसिड व अमोनिया का निर्माण होता है जिनकी उपस्थिति शरीर के लिए हानिकारक होती है ऐसे उत्पादों को **अपशिष्ट पदार्थ** (Waste product) कहते हैं। शरीर में प्रोटीन उपापचय से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों से मुक्त करने के लिए उत्सर्जन अत्यन्त आवश्यक है।

8.11.2 जन्तुओं में उत्सर्जन

मूत्र में उपस्थित नाइट्रोजन युक्त उत्सर्जी पदार्थों के आधार पर जन्तुओं में तीन प्रकार का उत्सर्जन पाया जाता है–

(1) **अमीनोटेलिक** (Aminotelic) – कुछ जन्तु जैसे सीपी, तारामीन, धोधा सीधे अमीनों अम्ल को उत्सर्जित कर देते है।

(2) **अमोनो टेलिक** (Ammonotelic) – अमीनो अम्ल उपापचयी क्रिया में अमोनिया एक अपशिष्ट पदार्थ के रूप में उत्पन्न होता है। अमोनिया जल के घुलनशील एवं विसरणशील होती है। हो जन्तु अमोनिया को उत्सर्जित करते हैं उन्हें अमोनोटेलिक कहते हैं।

(3) **यूरियोटेलिक** (Ureotelic) – प्रोटीन उपापचय से यूरिया नामक यौगिक यकृत में बनता है और जल में घुलनशील हो जाता है। जन्तु जो नाइट्रोजन उत्सर्जी पदार्थों को यूरिया के रूप में उत्सर्जन करते हैं यूरियोटेलिक कहलाते हैं। उदाहरण – मनुष्य, मछली, घोंघे, उभयचर (मेंढक) व सरीसृप।

(4) **यूरिकोटेलिक** (Uricotelic) – उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप बने यूरिक अम्ल का उत्सर्जी पदार्थ के रूप में उत्सर्जन होता है। यूरिक अम्ल प्रायः ठोस होता है ऐसे जन्तुओं को यूरिकोटेलिक कहा जाता है। उदाहरण – शुष्क वातावरण में रहने वाले जन्तु, पक्षी, सर्प, छिपकली।

अमीबा में उत्सर्जन

अमीबा एककोशिकीय जन्तु होने के कारण इसमें उत्सर्जी अंग नहीं पाये जाते हैं। अपशिष्ट पदार्थों निष्कासन विसरण द्वारा होता है। अमीबा के शरीर में संकुचनशील रसधानियां (Contractile vacuoles) भी पाई जाती है। जिनके द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर त्याग दिया जाता है।

हाइड्रा में उत्सर्जन

हाइड्रा में कोई उत्सर्जन अंग नहीं होता है। अमोनिया तथा गैसों का उत्सर्जन विसरण क्रिया द्वारा होता है।

केंचुए में उत्सर्जन

केंचुए में उत्सर्जन क्रिया वृक्कक (Nephridia) द्वारा होती है जो देहगुहा में स्थित होते हैं। यें अपशिष्ट पदार्थ को शरीर से बाहर खुलने वाले छिद्रों से उत्सर्जित करते हैं। केंचुओं का उत्सर्जी पदार्थ अमोनिया व यूरिया होता है।

तिलचट्टे में उत्सर्जन

तिलचट्टे में मुख्य उत्सर्जन अंग मैलपीघी नलिकाएं होती है। लगभग 80–90 मैलपीघी नलिकाएं पीली धागे के रूप में होती है जो आहारनाल के पश्च भाग में खुलती है। यह नलिकाएं विसरण द्वारा नाइट्रोजनी पदार्थों को ग्रहण करती है ये पदार्थ तरल अवस्था में इन नलिकाओं द्वारा प्रोक्टोडियम में पहुंच जाते हैं। आहारनाल के माध्यम से यह अपशिष्ट पदार्थ मल द्वारा शरीर से बाहर त्याग दिए जाते हैं।

मनुष्य में उत्सर्जन

मनुष्यों में उत्सर्जी अंग जैसे – त्वचा, यकृत, प्लीहा, आंत्र, फेफड़े, वृक्क आदि होते हैं। त्वचा पर स्वेद ग्रंथियां होती है जो पानी, यूरिया का निष्कासन करती है। वृक्क उत्सर्जन का प्रमुख अंग होता है। मनुष्य में उत्सर्जन तंत्र के प्रमुख अंग निम्न है।

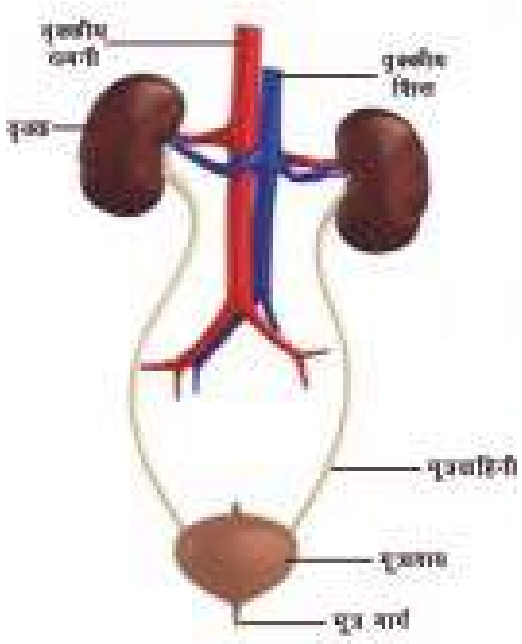

चित्र 8.28 : मनुष्य में उत्सर्जन तंत्र

(1) वृक्क (Kidney), (2) मूत्रवाहिनियां (Ureter), (3) मूत्राशय (Urinary bladder)।

(1) **वृक्क** (Kidney) – स्तनधारियों में एक जोड़ी वृक्क पाये जाते हैं। सेम के बीज के आकार के लाल रंग के वृक्क, डायफ्राम के नीचे कशेरूक दण्ड के दोनों ओर स्थित होते हैं। वृक्क 4–5 इंच लम्बा, 2 इंच चौड़ा व 140–150 ग्राम तक होता है।

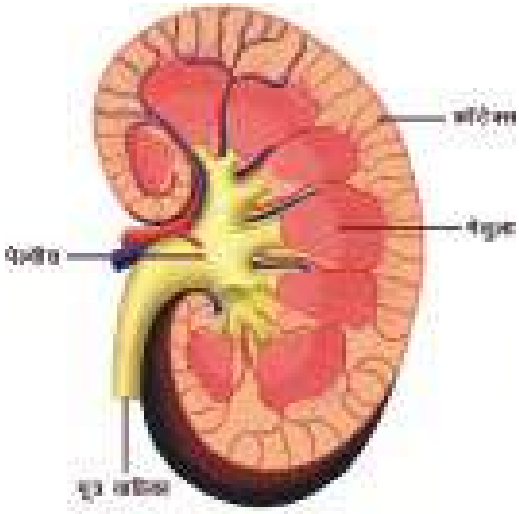

चित्र 8.29 : वृक्क की आंतरिक संरचना

चारों ओर से वसा परतों से सुरक्षित होता है। वृक्क का पतला बाहरी भाग कार्टेक्स (Cortex) तथा भीतरी मोटा भाग मेडुला (Medula) कहलाता है। वृक्क में असंख्य पतली नलिकाएं पाई जाती हैं। जिसे मूत्र नलिकायें या नेफ्रोन्स (Uriferous tubules or Nephrons) कहते हैं। नेफ्रोन्स में दो मुख्य भाग – बोमन सम्पुट व स्त्रावी भाग होते हैं। स्त्रावी भाग (Secretory portion) नेफ्रोन में बोमन सम्पुट के पीछे प्रारंभ होता है जिसके तीन भाग –(1) समीपस्थ कुण्डलित नलिका (2) हेनले लुप (3) दूरस्थ कुण्डलित नलिका होते हैं।

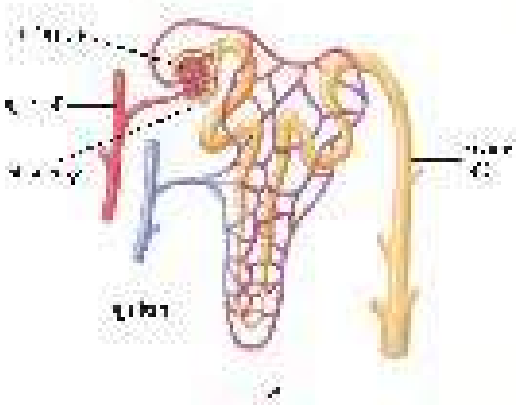

चित्र 8.30 : वृक्क में परानिस्यंदन क्रिया

(2) **मूत्र वाहिनियां** (Ureter) – ये एक जोड़ी होती है। वृक्क में

स्थित पेल्विस ही नली के रूप में नियमित होकर मूत्रवाहिनी का निर्माण करती है। मूत्रवाहिनी मूत्र को वृक्क से मूत्राशय तक पहुंचाती है।

(3) **मूत्राशय** (Urinary bladder) – मनुष्य की उदरगुहा पर थैलेनुमा रचना को मूत्राशय कहते हैं। बाह्य आवरण पेरीटोनियम कहलाता है। एक पतली नली द्वारा मूत्राशय बाहर खुलता है जिसे मूत्रमार्ग (Urethra) कहते हैं। मूत्रमार्ग एक छिद्र द्वारा शरीर के बाहर खुलता है।

मूत्र का उत्सर्जन (Urine Excretion)

यूरिया का निर्माण यकृत में होता है। वहीं से अशुद्ध रूधिर वृक्कीय धमनी द्वारा प्रत्येक वृक्क में पहुंचता है। अशुद्ध रूधिर लाने वाली धमनी अनेक अभिवाही धमनिकाओं में विभाजित होकर बोमन सम्पुट में स्थित केशिका गुच्छ (Glomerulus) को रक्त देती है। केशिका गुच्छ में रूधिर ले जाने वाली धमनियों को अभिवाही धमनियां तथा बाहर ले जाने वाली धमनियों को अपवाही धमनियां कहते हैं। अभिवाही धमनियों का व्यास अपवाही से अधिक होने से ग्लोमेरूलस में रूधिर दाब बढ़ जाता है। रूधिर दाब के कारण अभिवाही धमनियों के रूधिर से अतिसूक्ष्म परानिस्यंदन (Ultrafiltration) द्वारा रूधिर से जल, ग्लूकोज, यूरिया, यूरिक अम्ल तथा कुछ लवण छन कर बोमन सम्पुट में आ जाते हैं। उत्सर्जी पदार्थों के साथ–साथ ग्लूकोज, अमीनो अम्ल तथा दूसरे लवण भी होते हैं। बोमेन सम्पुट से यह द्रव वृक्क नलिका के स्त्रावी भाग में प्रवेश करता है। यहां से जल, ग्लूकोज व उपयोगी लवण का कुछ भाग पुनः अवशोषित किया जाता है। अवशेष द्रव में अपशिष्ट पदार्थ बचते हैं जिन्हें **मूत्र** कहते हैं। यह मूत्र वृक्क नलिका से संग्रहवाहिनी से सीधे मूत्रवाहिनी में चला जाता है जो मूत्राशय में खुलता है। मूत्राशय में मूत्र संग्रहित होता है जो मूत्राशय की पेशियों के संकुचन से मूत्र मार्ग द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

8.11.3 पादपों में उत्सर्जन (Excretion in Plants)

उच्च विकसित जन्तुओं में उत्सर्जन एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। जन्तुओं में इसी कारण विशिष्ट उत्सर्जन अंग पाये जाते हैं। पादपों में उत्सर्जन प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल है और पौधों में उत्सर्जन अंग एवं तंत्र नहीं पाये जाते हैं।

पादपों में सरल उत्सर्जन प्रक्रिया होने के अनेक कारण हैं–

1. जन्तुओं की तुलना में पादपों में उपापचयी क्रियाओं की दर कम होती है। अतः उपापचय क्रियाओं के फलस्वरूप बने अपशिष्ट पदार्थों के शरीर में एकत्रित होने की दर भी धीमी हो जाती है।
2. हरे पौधे, अपचयी क्रियाओं में बने अधिकांश अपशिष्ट उत्पादों का उपयोग उपचयी क्रियाओं में कर लेते हैं।
3. पौधों में प्रोटीन उपापचय में बने नाइट्रोजनी अपशिष्ट उत्पादों का उपयोग नव–प्रोटीनों के संश्लेषण में हो जाता है।
4. पादपों का उपापचय मुख्यतया कार्बोहाइड्रेट पर आधारित है। कार्बोहाइड्रेट के उपापचय से उत्पन्न अन्तिम उत्पाद, प्रोटीन के उपापचय के उत्पन्न उत्पादों से कहीं कम विषाक्त एवं हानिकारक होते हैं। अतः पादपों में उत्सर्जन की आवश्यकता जन्तुओं की तुलना में बहुत कम होती है। फिर भी पादपों में बने कुछ अपशिष्ट उत्पादों का उत्सर्जन अथवा उनका हानिरहित रूप में संग्रह आवश्यक है।
5. जलीय पौधों में कुछ अपशिष्ट पदार्थ पादप कोशिकाओं की कोशिका भित्ति से होते हुए बाहरी जलीय वातावरण में विसरित हो जाते हैं।
6. स्थलीय पादपों में आवश्यकता से अधिक गैसें, जैसे कि ऑक्सीजन एवं कार्बन डाई ऑक्साइड तथा जल, जल–वाष्प के रूप में रन्ध्रों एवं कभी–कभी वातरन्ध्रों (Lenticels) द्वारा निकल जाती है।
7. कुछ अपशिष्ट उत्पाद जैसे कार्बनिक अम्ल, घुलित अवस्था में कोशिकाओं की रिक्तकाओं में संग्रहित होते हैं अतः ये पदार्थ कोशिकाओं की विभिन्न जैव–प्रक्रियाओं में बाधक नहीं हो पाते हैं। नींबू, संतरा आदि का खट्टा स्वाद इन अम्लों के रिक्तिका में संग्रहण के कारण होता है।

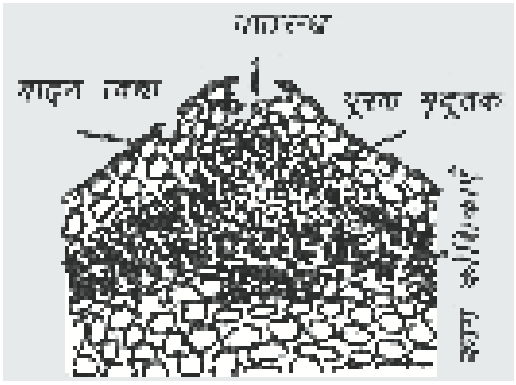

चित्र 8.31 : वातरन्ध्र की संरचना

8. कई अपशिष्ट उत्पाद घुलित रूप में रिक्तकाओं में पाये जाते हैं। ये पदार्थ भले ही पौधों के लिए अनावश्यक हों किन्तु हमारे लिए यह बहुत ही उपयोगी है। इनका

उपयोग कई औषधियों में किया जाता है। गोंद भी अपशिष्ट उत्पाद है।

9. कुछ अनावश्यक पदार्थ ठोस रवों (crystals) के रूप में, पर्ण की मृत कोशिकाओं में या तने की काष्ठीय कोशिकाओं में संग्रहित होते हैं। ये रवे अधिकांशतः कैल्सियम कार्बोनेट तथा कैल्सियम ऑक्जेलेट के होते हैं।

बिन्दु–स्राव (Guttation)

यदि आप प्रातःकाल पीपल के वृक्ष के नीचे खड़े हों तो आपको जल की सूक्ष्म बूंदों का आपके ऊपर गिरने का अनुभव होगा। यह इस वृक्ष के पर्णों से निकलने वाला जल है। इसी प्रकार टमाटर, दूब घास आदि

में पर्ण के किनारे या सिरों पर जल बून्दों के रूप में बाहर निकलता है। इस क्रिया को बिन्दु–स्राव कहते हैं। इन पौधों में बिन्दु स्राव के लिए विशेष **जल–रन्ध्र (Hydathodes)** पाये जाते हैं। ये पर्ण की शिराओं के अन्तिम सिरों पर होते हैं। प्रत्येक सूक्ष्म रन्ध्र, एक छोटी गुहिका में खुलता है। इस गुहिका के चारों ओर पतली भित्ति की कोमल मृदूतक कोशिकाएं होती हैं।

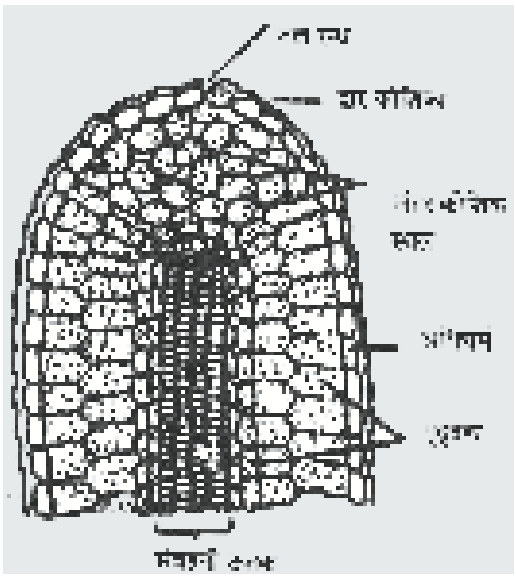

चित्र 8.32 : जलरन्ध्र

बिन्दु–स्राव अधिक अवशोषण एवं कम वाष्पोत्सर्जन की अवस्था में सबसे अधिक होता है। जल बूंदों के साथ, कुछ घुलित अपशिष्ट पदार्थ भी बाहर निकलते हैं जो कि सूख कर पपड़ी के रूप में रन्ध्र के आस–पास जम जाते हैं।

8.12 जनन (Reproduction)

8.12.1 अर्थ व आवश्यकता

वर्षा ऋतु में आपने नीम, बबूल एवं अन्य पेड़ पौधों के नीचे असंख्य छोटे–छोटे पौधे उगे हुए देखे होंगे। इसी तरह विभिन्न जन्तुओं जैसे–कुत्ते, बिल्ली, बन्दर में बच्चे तथा पक्षियों जैसे–चिड़िया, कबूतर, मुर्गी आदि में अण्डों से चूजे निकलते हुए देखे होंगे कुछ समय पश्चात् ये सभी सजीव अपनी प्रजाति के वयस्क सदस्यों के समान परिवर्धित हो जाते हैं। वयस्क हो जाने पर ये भी अपने समान संतति उत्पन्न कर अपनी प्रजाति की निरन्तरता सृष्टि में बनाये रखने में सहयोग करते हैं।

अतः यह क्रिया जिसके द्वारा सजीव अपने समान संतति उत्पन्न करता है, को **जनन** कहते हैं। जनन क्रिया द्वारा ही सृष्टि में अनादि काल से वर्तमान तक विभिन्न जैव प्रजातियों की निरन्तरता बनी हुई है। श्वसन, उत्सर्जन आदि विभिन्न क्रियाओं की भाँति यह क्रिया सजीवों के जीवित रहने के लिए तो आवश्यक नहीं है किन्तु सृष्टि में प्रजाति के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जनन आवश्यक है।

जनन क्रिया को हम दो भागों में बाँटकर अध्ययन करते हैं–

(i) अलैंगिक जनन

(ii) लैंगिक जनन

अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)– सजीवों की उत्पत्ति सजीवों से ही होती है। यदि संतति की उत्पत्ति एक ही जनक से प्राप्त कोशिका अथवा जीव के किसी भी विशिष्ट कायिक संरचना से होती है तो इस प्रकार के जनन को **अलैंगिक जनन** कहते हैं।

लैंगिक जनन

(Sexual Reproduction)

नर तथा मादा जननांगों द्वारा यह जनन क्रिया सम्पन्न होती है। नर एवं मादा जननांगों द्वारा उत्पन्न युग्मकों के संयोजन से युग्मनज (Zygote) का निर्माण होता है। युग्मनज के परिवर्धन से ही सजीव की उत्पत्ति होती है, इसे लैंगिक जनन कहते हैं।

दो युग्मकों के मिलन से जो नया जीव बनता है उसमे विभिन्नतायें होती है जो नये जीवों के उद्ववविकास की आधारशिला बनती है। उद्ववविकास के नजरिये से लैंगिक जनन ज्यादा सार्थक है।

8.12.2 जन्तुओं में जनन

जनन प्राणियों का स्वाभाविक गुण है, इसी के द्वारा सभी जीव प्रकृति में अपनी जाति को बनाये रखने के लिए सन्तानोत्पत्ति करते हैं जिसे **जनन** कहते हैं। जन्तुओं की संख्या में वृद्धि जनन द्वारा होती है। जन्तुओं में जनन दो प्रकार का पाया जाता है– (1) अलैंगिक जनन (2) लैंगिक जनन।

(1) **अलैंगिक जनन** (Asexual reproduction) – यदि संतति

की उत्पत्ति एक ही जनक से प्राप्त कोशिका अथवा जीव शरीर के किसी भी भाग से या कायिक अंग से होती है तो इस प्रकार के जनन को अलैंगिक जनन कहते हैं। इस प्रकार के जनन में नर व मादा युग्मक नहीं बनते हैं। अकशेरूकीय जन्तुओं में अलैंगिक जनन कई प्रकार का होता है–

(i) द्विविखण्डन (Binary fission) – एककोशिकीय जीवों में कोशिका विभाजन या विखण्डन द्वारा समान जीवों की उत्पत्ति होती है। इसमें जन्तु विखण्डन द्वारा दो समान आकार में विभाजित हो जाता है। उदाहरण – *पैरामिशियम, यूग्लिना, अमीबा* आदि।

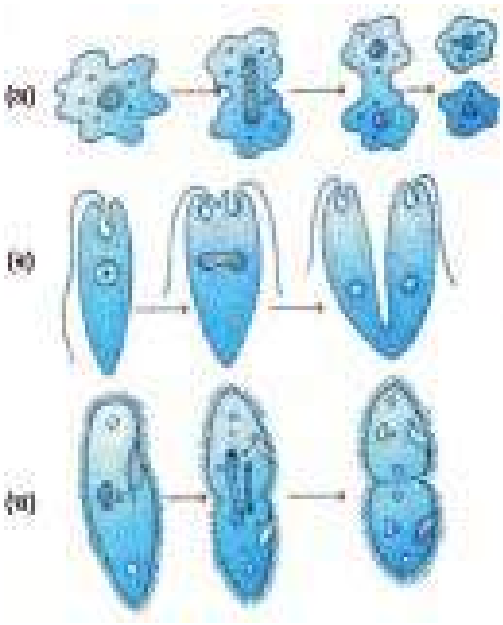

चित्र 8.33 : प्रोटोजोआ वर्ग के जीवों में विभिन्न प्रकार के द्विविखण्डन – (अ) अनियमित (*अमीबा*) (ब) लम्बवत् (*यूग्लीना*) (स) पार्श्वीय (*पैरामिशियम*)

(ii) बहुखण्डन (Multiple fission)– इस प्रकार के विभाजन में पहले प्राणी के केन्द्रक का विभाजन होता है, इस कारण कई पुत्री केन्द्रक बन जाती है। बाद में कोशिकाद्रव्य में विभाजन होता है। केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य इकट्ठा होने से नई संतति प्राप्त होती है। इस प्रकार जनक प्राणी से नये संतति प्राणी का निर्माण होता है। उदाहरण – *प्लाज्मोडियम* आदि।

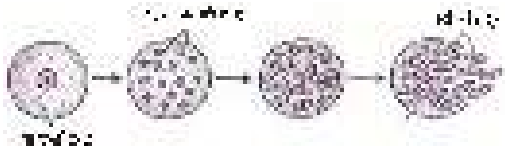

चित्र 8.34 : *प्लाज्मोडियम* में बहुखण्डन

(iii) पुनरुद्भवन (Regeneration) – कुछ जीवों में अपने कायिक भाग के विभाजन द्वारा नए जीवों के निर्माण की अद्भुत क्षमता पायी जाती है। जीव कुछ टुकडो में खण्डित हो जाता है, प्रत्येक खण्ड वृद्धि कर एक नए जीव में विकसित हो जाते हैं। जीव का पुर्ननिर्माण करने की प्रक्रिया पुनरुद्भवन कहलाती है। उदाहरण – *प्लेनेरिया, हाइड्रा,* **तारामछली** आदि।

चित्र 8.35 : विभिन्न जीवों में पुनरूद्भवन

(iv) मुकुलन (Budding) – कुछ प्राणी में पुनर्जनन की क्षमता वाली कोशिकायें पाई जाती हैं। इन प्राणी के शरीर से एक कलिका का निर्माण होता है। यह कलिका आकार में बड़ी होकर जनक प्राणी से अलग हो जाता है एवं नये प्राणी का निर्माण करती है। इस विधि को मुकुलन कहते हैं। उदाहरण – *हाइड्रा*।

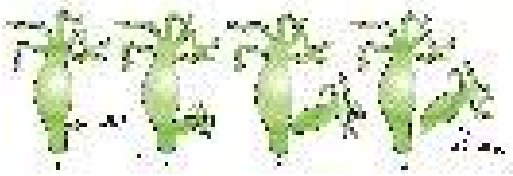

चित्र 8.36 : हाइड्रा में मुकुलन

(2) लैंगिक जनन (Sexual reproduction)

वह जनन जिसके अन्तर्गत नयी संतति उत्पन्न करने के लिए दो (एकल जीवों) जीवों की भागीदारी होती है। दो जनक जीवों के नर व मादा युग्मकों (शुक्राणु व अण्डाणु) के मिलने से अपने समान नये जीव की उत्पत्ति होती है जिसे लैंगिक जनन कहते हैं। उच्च अकशेरूकी व कशेरूकी प्राणियों में लैंगिक जनन पाया जाता है।

(i) ***हाइड्रा*** **में लैंगिक जनन** – हाइड्रा के शरीर पर गांठों के रूप नर एवं मादा जननांग वृषण एवं अण्डाशय का निर्माण होता है। नर व मादा युग्मकों के संयोजन से युग्मनज का निर्माण होता है, युग्मनज के परिवर्धन से हाइड्रा का निर्माण होता है।

(ii) केंचुए में लैंगिक जनन – केंचुआ एक उभयलिंगी प्राणी होता है इसके कारण केंचुए में स्वनिषेचन नहीं पाया जाता है। नर युग्मक मादा युग्मक से पहले परिपक्व होते हैं। नर जनन तंत्र में वृषण 10वें तथा 11वें खण्ड में स्थित होता है। मादा जननांग

में अण्डाशय, 13वें खण्ड में स्थित होता है। इनमें वर्षा ऋतु में मैथुन क्रिया होती है। इस हेतु दो केंचुए परस्पर सम्पर्क में आते हैं। केंचुए के अण्डे पीले थैलीनुमा आवरण कोकुन में सुरक्षित रहते हैं तथा कोकुन में ही निषेचन क्रिया सम्पन्न होती है।

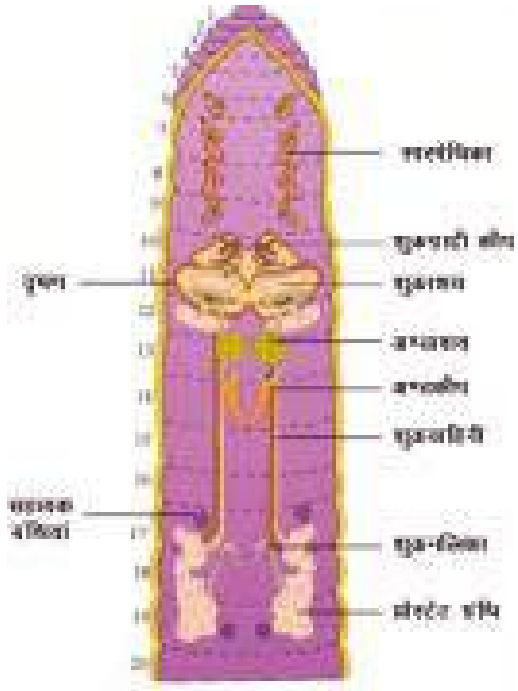

चित्र 8.37 : केंचुए का जनन तंत्र

(iii) मनुष्य में जनन – उच्च विकसित प्राणियों में नर तथा मादा जननांग अलग–अलग प्राणियों में स्थित होता है। नर में उपस्थित जनन कोशिका को नर युग्मक या शुक्राणु कहते हैं जो गतिशील होती है तथा मादा में उपस्थित जनन कोशिका को मादा युग्मक या अण्डाणु कहलाता है जो नर युग्मक से बड़ी होती है परन्तु गतिशील नहीं होती है।

मानव जनन तंत्र अन्य विकसित प्राणियों से अधिक विकसित होता है। मानव जननतंत्र एक निश्चित आयु जिसे यौवनारंभ काल कहते हैं, पर क्रियाशील होता है। लड़कों में यौवनारंभ 13–14 वर्ष की उम्र में जबकि लड़कियों में इसकी आयु 10–12 वर्ष की उम्र में होती है। मानव जनन तंत्र को दो भागों में बांटा गया है–

(a) नर जनन तंत्र – जनन कोशिका उत्पादित करने वाले अंग व जनन कोशिकाओं के निषेचन क्रिया के स्थान तक पहुंचाने वाले अंग, संयुक्त रूप से नर जनन तंत्र कहलाता है जिसके अन्तर्गत वृषण, शुक्रवाहिनियां, शुक्राशय, मूत्र जनन मार्ग प्रोस्टेट ग्रंथियों का बना होता है। नर जनन कोशिका अर्थात् शुक्राणु का निर्माण वृषण में होता है। नर में एक जोड़ी वृषण उदर गुहा के बाहर वृषण कोष में स्थित होते हैं क्योंकि शुक्राणु के उत्पादन के लिए आवश्यक ताप शरीर के ताप से कम होना चाहिए। वृषण असंख्य शुक्र जनन नलिकाओं का बना होता है ये सभी शुक्रजनन नलिकाएं एक कुण्डलित रचना एपिडिडाइमिस में खुलती है। एपिडिडाइमिस का दूरस्थ सिरा शुक्रवाहिनी में खुलता है। शुक्रवाहिनी उदरगुहा में स्थित पेशीय थैलीनुमा संरचना शुक्राशय में खुलती है। वृषण द्वारा उत्पन्न शुक्राणु अपनी–अपनी शुक्रवाहिनी द्वारा शुक्राशय में पहुंचा दिये जाते हैं जहां शुक्राणु संग्रहित रहते हैं तथा पोषण प्राप्त करते हैं। शुक्राशय से एक स्खलन वाहिनी निकलती है जो शुक्राशय को मूत्र मार्ग से जोड़ती है। मूत्र मार्ग पेशीय रचना शिश्न से घिरा रहता है तथा एक छिद्र से बाहर खुलता है। इस छिद्र द्वारा मूत्र एवं जनन द्रव्य दोनों बाहर निकलते हैं। शुक्राशय के पास स्थित प्रोस्टेट ग्रंथियाँ दूधिया द्रव स्वात्रित करती है। शुक्राणु का उत्पादन तथा यौवनावस्था में प्रदर्शित लैंगिक लक्षण टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन के कारण होता है। गतिशील शुक्राणु में मुख्यतः आनुवंशिक पदार्थ होता है तथा एक लम्बी पूंछ होती है जो मादा युग्मक की ओर तैर कर पहुंचाता है।

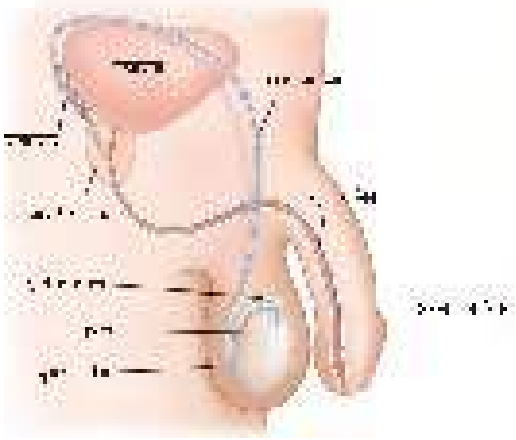

चित्र 8.38 : मनुष्यों में नर जनन तंत्र

(b) मादा जनन तंत्र – नर की अपेक्षा मादा जनन को अपेक्षाकृत जटिल होता है। मादा जनन कोशिका अर्थात् अण्डाणु का निर्माण अण्डाशय में होता है जो कुछ हार्मोन के द्वारा उत्पादित होता है। मादा जननांग में एक जोड़ी अण्डाशय, अण्डवाहिनियां, गर्भाशय एवं योनि होती है। लड़की के जन्म के समय कई सारे अपरिपक्व अण्ड दोनों अण्डाशय में पाये जाते हैं। यौवनारंभ होते ही ये अण्ड परिपक्व होना प्रारंभ हो जाते है।

अण्डाशय का आंतरिक स्तर जनन एपीथिलियम कोशिकाओं का बना होता है जो अण्डों का निर्माण करता है इसे अण्ड जनन कहते हैं। प्रत्येक अण्डाशय के सामने एक कीपाकार संरचना पायी जाती है जो अण्डवाहिनी में खुलती है। दोनों ओर की अण्डवाहिनी मिलकर पेशीयुक्त थैलीनुमा संरचना अर्थात् गर्भाशय का निर्माण करता है। गर्भाशय ग्रीवा द्वारा योनि में खुलता है। मैथुन के समय शुक्राणु योनि मार्ग द्वारा ही अण्डवाहिनी में पहुंच कर अण्ड से निषेचित हो जाता है तथा यही निषेचित अण्ड गर्भाशय में स्थापित हो जाता है। यहीं पर निषेचित अण्ड धीरे–धीरे भ्रूण में विकसित होना प्रारंभ करता हैं भ्रूण के पोषण व उत्सर्जन के लिए एक संरचना का निर्माण होता है जिसे प्लेसेन्टा कहते हैं। मादा हार्मोन प्रोजेस्ट्रोन एवं एस्ट्रोजन मादा शरीर में लैंगिक लक्षणों के लिए उत्तरदायी होता है।

स्तनधारियों की मादाओं में दो प्रकार के अण्डाशयी चक्र पाये जाते हैं।

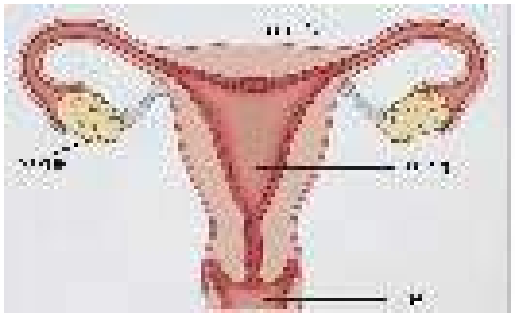

चित्र 8.39 : मनुष्यों में मादा जनन तंत्र

(i) रज चक्र (Menstrual cycle) – यदि अण्डकोशिका का निषेचन नहीं हो तो यह अण्डोत्सर्ग के पश्चात् एक दिन तक ही जीवित रहती है जिसके उपरांत गर्भाशय की आंतरिक भित्ति रक्तवाहिनियों के साथ टूट कर रक्तस्त्राव के रूप में बाहर निकलती है। इसे ऋतुस्त्राव अथवा रजोधर्म कहते हैं। इसकी अवधि 4–7 दिन की होती है। स्त्रियों में यह क्रिया नियमित 28–30 दिन के अंतराल में सम्पन्न होती है इसे **रज चक्र** या **रजोधर्म** कहते हैं। मादाओं में यौवनारंभ के समय रज चक्र या रजोधर्म के प्रारंभ को रजोदर्शन कहते हैं जो स्त्री जननकाल के आरंभ होने का संकेत होता है।

(ii) मद चक्र (Estrous cycle) – अधिकांश स्तनियों में प्रजनन काल एक निर्धारित ऋतु में होता है जिसे मद चक्र या प्रजनन काल कहते हैं। इस प्रजनन काल में मादाओं द्वारा अण्डोत्सर्जन के पश्चात् सहवास की तीव्र इच्छा जागृत होती है तथा ये प्रजनन कर सन्तान उत्पन्न करती है। यह चक्र अधिकांश स्तनधारी मादाओं में उपस्थित होता है। उदाहरण – कुत्ते, बिल्ली, गाय आदि।

8.12.3 पादपों में जनन

(Reproduction in plants)

पादपों में जनन क्रिया अलैंगिक एवं लैंगिक दोनों विधियों से सम्पन्न होती है। नीचे जनन की प्रमुख विधियाँ समझायी गयी हैं–

पादपों में अलैंगिक जनन

इस विधि में नव पादप का परिवर्धन एक ही जनक से प्राप्त कोशिका अथवा पादप की किसी भी विशिष्ट कायिक संरचना से होता है। पादपों में अलैंगिक जनन की निम्न सामान्य विधियाँ हैं।

(क) मुकुलन (Budding) – डबल रोटी निर्माण में काम में ली जाने वाली खमीर (यीस्ट) में अलैंगिक जनन मुकुलन विधि द्वारा होता है। इस विधि में यीस्ट कोशिका की सतह पर एक लघु गोलाकार अतिवृद्धि उत्पन्न होती है इसे **मुकुल** (Bud) कहते हैं। अब कोशिका में स्थित केन्द्रक समसूत्री विभाजन द्वारा दो पुत्री केन्द्रकों में विभक्त हो जाता है। इनमें से एक केन्द्रक मुकुल में चला जाता है तथा दूसरा केन्द्रक मातृ कोशिका में ही रह जाता है। कुछ समय पश्चात् मुकुल वयस्क आकार ग्रहण कर मातृ कोशिका से अलग होकर नयी यीस्ट जीव बना लेती है।

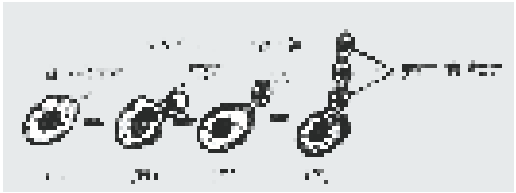

चित्र 8.40 : यीस्ट में मुकुलन

कभी–कभी यीस्ट कोशिका पर एक के ऊपर एक मुकुल उत्पन्न हो जाने से मुकुलों की एक शृंखला बन जाती है। इस प्रकार मुकुलन विधि द्वारा अलैंगिक जनन सम्पन्न होता है।

(ख) बीजाणुजनन (Sporogenesis)– कवकों में अलैंगिक जनन की यह सबसे सामान्य विधि है। इस विधि में तन्तु में एक संरचना–बीजाणुधानी विकसित होती है। बीजाणुधानी में स्थित केन्द्रक विभाजन के फलस्वरूप कई पुत्री केन्द्रकों में विभक्त हो जाता है। प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर थोड़ा कोशिकाद्रव्य

इकट्ठा हो जाता है, जिससे वह एक बीजाणु में परिवर्तित हो जाता है। बीजाणुओं के परिपक्व हो जाने पर बीजाणुधानी फट जाती है तथा बीजाणु भूमि अथवा अधःस्तर के सम्पर्क में आने पर अंकुरित होकर नव कवक तन्तु में परिवर्धित हो जाते हैं। उदाहरण– *राइजोपस*।

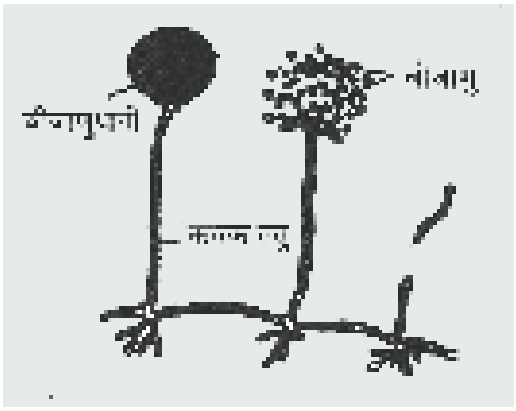

चित्र 8.41 : *राइजोपस* में बीजाणु जनन

कायिक जनन (Vegetative reproduction)

आपने विभिन्न फसली पादपों जैसे गेहूँ, जौ, चना, बाजरा आदि में बीजों के अंकुरण द्वारा पौधा परिवर्धित होते हुए देखा होगा। क्या आपने केला, गुलाब गन्ना आदि में कभी बीज उत्पन्न होते देखा है। आप देखेंगे कि विभिन्न कारणों से इनमें बीज नहीं पाये जाते हैं। इनके कायिक अंगों में जनन क्षमता पायी जाती है। केले की जड़, गुलाब, मोगरा के तने तथा *ब्रायोफिल्लम* की पत्तियों से नव पादप उत्पन्न हो जाते हैं। शकरकंद की जड़ों पर तथा आलू के कंद पर प्रसुप्त कलिकाएं पायी जाती हैं इनसे कायिक जनन द्वारा नव पादप तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार पादप के कायिक अंगों जैसे–जड़, तना अथवा पत्तियों से नव पादप विकसित होने को कायिक जनन कहते हैं। (उच्च पादपों में अलैंगिक जनन शब्द उपयोग नहीं किया जाता है) निम्न वर्ग के पादपों जैसे– *स्पाइरोगाइरा ऑसिलेटोरिया* आदि में कायिक जनन विखण्डन द्वारा होता है।

मानव ने विभिन्न पादपों की कायिक जनन क्षमता का उपयोग करते हुए कायिक जनन की कुछ विधियाँ विकसित की जिनके द्वारा त्वरित गति से तथा कम समय में अधिकाधिक पादप तैयार किये जा सकते हैं तथा पादपों की उन्नत किस्मों तथा वांछित गुणों को अपरिवर्तित रखा जा सकता है। इन विधियों को अपनाकर हम अपने घर, खेत एवं उद्यान को शोभनीय तथा आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बना सकते हैं।

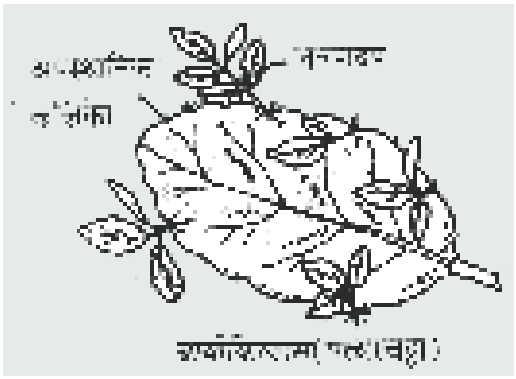

चित्र 8.42 : पर्ण द्वारा कायिक जनन

कृत्रिम कायिक प्रवर्धन
(Artificial vegetative propagation)

मानव द्वारा कायिक जनन की निम्न विधियां विकसित की गई हैं जिनके द्वारा कायिक जनन संभव है।

(क) **कर्तन (Cutting)–** पादप के जड़, तना अथवा पत्ती के स्वस्थ एवं पूर्ण विकसित खण्ड को **कर्तन** कहते हैं। कर्तन के कुछ हिस्से को नम मिट्टी में दबाने पर इससे जड़ें उत्पन्न हो जाती हैं तथा मातृ पादप के समान नव पादप परिवर्धित हो जाता है। अंगूर, गुलाब, फालसे आदि पादपों के व्यावसायिक प्रवर्धन में कर्तन विधि का व्यापक उपयोग किया जाता है।

(ख) **कलम रोपण (Grafting) –** दो पादपों को जोड़ने की विधि को कलिका रोपण या कलम लगाना कहते हैं। इस विधि में भिन्न–भिन्न पादपों के दो भागों (स्तंभ) को आपस में इस प्रकार जोड़ा जाता है कि वे संयुक्त होकर एक पादप के रूप में परिवर्धित हो जाते हैं।

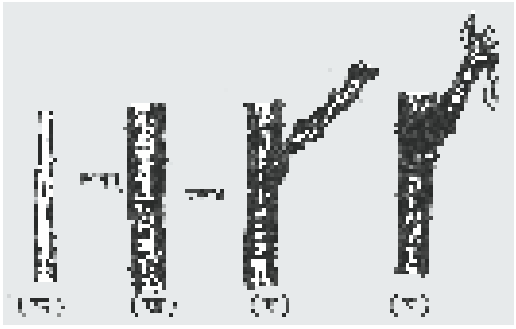

चित्र 8.43 : (ब) कलम रोपण विधि

सुविकसित मूल तंत्र वाले पौधे को स्कन्ध या स्टॉक (Stock) तथा इस पर स्थापित किये जाने वाले उत्तम गुणों वाले पादप स्तम्भ को कलम या सियन (scion) कहते हैं। स्कन्ध की स्वस्थ शाखा को ऊपर से तथा उतनी ही मोटाई की कलम

को नीचे से काटकर इस प्रकार बांधा जाता है कि दोनों का संवहनी (एधा) भाग एक दूसरे के सम्पर्क में रहे। कुछ दिनों में कलम तथा स्कन्ध के ऊतक परस्पर संयुक्त हो जाते हैं तथा एक पादप के रूप में विकसित हो जाते हैं।

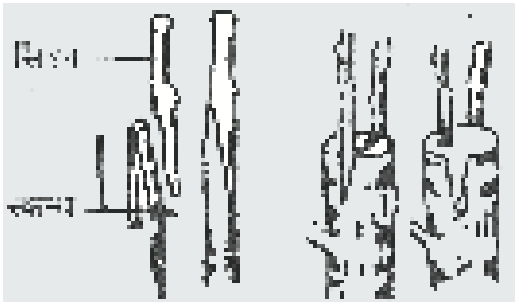

चित्र 8.44 : (स) कलम बांधने की विभिन्न अवस्थाएं (क) तैयार हुआ कलम (ख) मूल स्कंध (ग) स्कंध में प्रविष्ट किया हुआ कलम (घ) वृद्धि दशार्ती हुई कलम

इस विधि द्वारा एक ही स्कन्ध पर विभिन्न किस्में भी आरोपित की जा सकती हैं। फल एवं फूलदार पादपों की किस्म सुधार हेतु इस विधि का व्यापक स्तर पर उपयोग किया जाता है। जैसे–नींबू, संतरा।

(ग) दाब लगाना (Layering) – लम्बी लचीली शाखा वाले पादप जैसे मोगरा, लीची, अनार आदि में कायिक जनन की यह उपयुक्त विधि है। इस विधि में पादप की शाखा को मातृ पादप से अलग करने से पूर्व ही उसमें मूलन करवाया जाता है। इस विधि में दो प्रकार से शाखाओं में जड़ें उत्पन्न की जाती हैं–

(1) टीला दाब विधि– पादप की लम्बी शाखा को झुकाकर बीच में मिट्टी डालकर दबा देते हैं। 2–4 दिन के अन्तराल से मिट्टी पर पानी डालते रहते हैं। लगभग 15–20 दिनों में शाखा के मिट्टी में दबे भाग से जड़ें उत्पन्न हो जाती हैं। अब इसे मातृ पादप से काटकर अलग कर देते हैं।

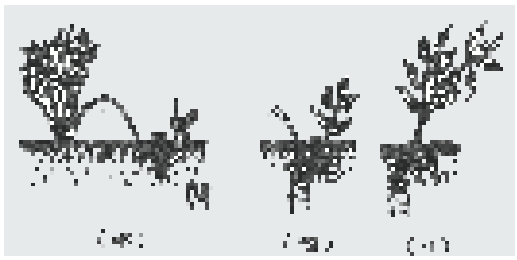

चित्र 8.45 : दाब लगाने की विधि

(2) गुट्टी या वायु दाब विधि – काष्ठीय पादपों जैसे अनार, लीची आदि में शाखाएं भूमि से कई मीटर ऊँची होती हैं। वृक्ष की 1–2 वर्ष पुरानी शाखा की छाल को चाकू से काटकर एक खाँच या वलय बनाया जाता है। इस कटे हुए भाग के चारों ओर गीली मॉस लपेटकर टाट के टुकड़े या पॉलीथीन से बांध देते हैं। इस वलय के पास स्थित एक अन्य शाखा पर थोड़ी ऊँचाई पर एक मटकी के पैंदे में बारीक छेद कर उसमें सूतली पिरो देते हैं। सूतली का निचला सिरा मॉस के चारों ओर लपेट देते हैं। अब मटकी में जल भर देते हैं जिससे सूतली गीली होकर मॉस को नम बनाये रखती है। कुछ दिनों में वलय वाले स्थान पर जड़ें उत्पन्न हो जाती हैं। अब इस शाखा को वलय के नीचे से काटकर नव पादप के रूप में लगा देते हैं। इसे गूट्टी या वायु दाब विधि कहते हैं।

कायिक जनन का महत्व

(1) प्राकृतिक रूप से बीज नहीं बनाने वाले अथवा बीजांकुरण की कम मात्रा वाले पादपों जैसे केला, सन्तरा, अंगूर की बीज रहित किस्में तथा गुलाब आदि पौधों की किस्मों को बनाये रखने तथा इनकी व्यावसायिक स्तर पर उपलब्धता के लिए कायिक जनन ही एक मात्र विधि है।

(2) बीज द्वारा उत्पन्न पादपों से फल तथा पुष्प प्राप्त होने में काफी समय लगता है तथा सभी बीजों के अंकुरण एवं पादप बनने की निश्चितता नहीं होती जबकि कायिक जनन सुनिश्चित होता है तथा इससे कम समय में ही पुष्प एवं फल प्राप्त हो जाते हैं।

(3) कायिक जनन से प्राप्त नवपादप एवं फल गुणों में मातृ पादप से पूर्णतः समान होते हैं जिससे वांछित गुण पीढ़ी दर पीढ़ी बने रहते हैं जबकि बीजों से उत्पन्न पादपों के गुण भिन्न स्तर के होते हैं।

पादपों में लैंगिक जनन

(Sexual reproduction in plants) :–

पादप जगत में पुष्पी पादप वर्ग सबसे विकसित है। पुष्प पादप के जननांगों को धारण करता है। कुछ पादपों में नर तथा मादा जननांग एक ही पादप में स्थित होते हैं। ऐसे पादपों को उभयलिंगी (Bisexual) तथा नर एवं मादा जननांग भिन्न–भिन्न पादपों में स्थित हों ऐसे पादपों को एकलिंगी **(Unisexual)** पादप कहते हैं। सरसों या धतूरे के पुष्प द्वारा हम लैंगिक जनन को सरलता से समझा सकते हैं।

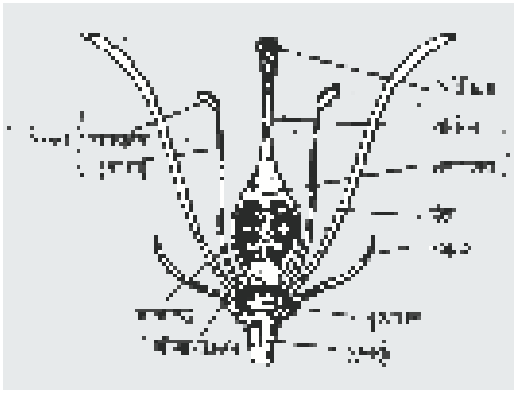

चित्र 8.46 : (द) पुष्प के विभिन्न भाग

पुष्पवृन्त के शीर्ष एवं फूले हुए भाग को **पुष्पासन** कहते हैं। पुष्पासन पर पुष्प के चारों चक्र **बाह्यदलपुंज, दलपुंज, पुमंग** तथा **जायांग** स्थित होते हैं। पुमंग एवं जायांग को जनन चक्र तथा बाह्यदलपुंज को सहायक चक्र कहते हैं। इन चारों चक्रों के एक इकाई सदस्य को क्रमशः **बाह्यदल, दल, पुंकेसर** तथा **स्त्रीकेसर** (अण्डप) कहते हैं। बाह्यदल सामान्यतः हरे रंग के एवं दल या पंखुड़ी रंगीन एवं आकर्षक होते हैं। पुंकेसर में एक तन्तु होता है व शीर्ष भाग चपटा होकर परागकोष बनाता है। परागकोष में परागकणों का निर्माण होता है। प्रत्येक परागकण दो नर युग्मक बनते हैं। मादा जननांग स्त्रीकेसर या अण्डप को तीन भागों में बांट सकते हैं। नीचे का फूला हुआ भाग **अण्डाशय (Ovary)** जिसमें बीजाण्ड होते हैं। प्रत्येक बीजाण्ड में एक

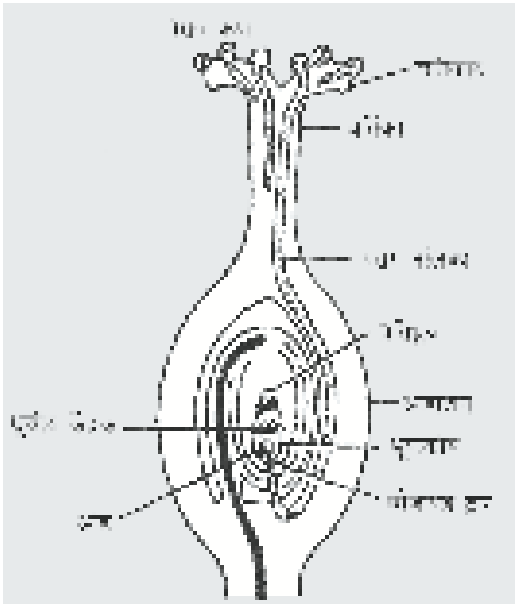

चित्र 8.47 : पुष्पी पादप में निषेचन

मादा युग्मक अण्ड होता है। अण्डाशय से ऊपर की ओर एक लम्बी नलिकाकार रचना **वर्तिका (style)** विकसित होती है। वर्तिका के शीर्ष चपटे भाग को **वर्तिकाग्र (stigma)** कहते हैं।

परागण (Pollination)

परागकणों का उसी प्रजाति के पुष्प की वर्तिकाग्र तक पहुँचने की क्रिया को परागण कहते हैं। परागण के पश्चात् ही नर एवं मादा युग्मकों का संलयन होता है। परागण वायु, कीट, जल या स्वतः स्फुटन द्वारा हो सकता है। पुष्प के परागकणों का उसी पुष्प या उस पादप पर स्थित अन्य पुष्प की वर्तिकाग्र पर पहुँचने को **स्व परागण (Self pollination)** तथा परागकणों का उसी प्रजाति के अन्य पादप पर स्थित पुष्प की वर्तिकाग्र पर पहुँचने को **पर परागण (Cross pollination)** कहते हैं।

निषेचन तथा भ्रूण परिवर्धन
(Fertilization and embryo development)

परागण द्वारा परागकण वर्तिकाग्र पर एकत्र हो जाते हैं। यहां परागकण के अंकुरण से एक नलिका **परागनलिका** उत्पन्न होती है। यह नलिका वर्तिका में प्रवेश कर अण्डाशय तक पहुँचती है तथा यहां स्थित बीजाण्ड (ovule) में उपस्थित एक सूक्ष्म छिद्र **बीजाण्डद्वार** द्वारा प्रवेश करती हैं। बीजाण्ड में परागनलिका से दो नर युग्मक बीजाण्ड में स्थित भ्रूण कोष (Embryosac) में पहुँचते हैं। यहां एक नर युग्मक का अण्ड से संलयन होता है। यही वास्तविक निषेचन है जिसके द्वारा **युग्मनज** का निर्माण एवं भ्रूण परिवर्धन होता है। दूसरे नर युग्मक का भ्रूणकोष में स्थित दो केन्द्रकों से संलयन होकर एक त्रिकेन्द्रकी रचना बनती है। इसे **त्रि संलयन** कहते हैं। इस प्रकार निषेचन क्रिया के दौरान भ्रूणकोष में दो युग्मकों (अण्ड तथा एक नर युग्मक) तथा तीन केन्द्रकों (एक नर युग्मक तथा दो ध्रुवीय केन्द्रक) का अलग–अलग संलयन होता है अतः इसे **दोहरा निषेचन (Double fertilization)** कहते हैं। निषेचन से बीजाण्ड बीज में तथा अण्डाशय फल में परिवर्धित हो जाते हैं। इस प्रकार पुष्पों में लैंगिक जनन सम्पन्न होता है।

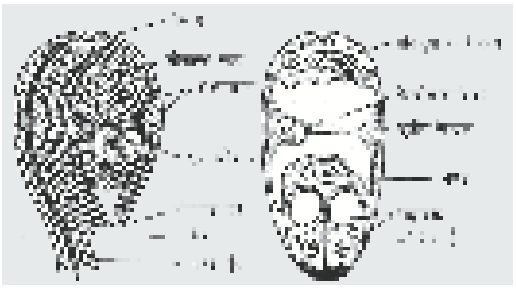

चित्र 8.48 : पुष्पी पादप में बीजाण्ड तथा भ्रूणकोष

8.13 नियमन (Regulation)

8.13.1 संवेदनशीलता

जन्तु अपने वातावरण एवं वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अनुक्रियाएं प्रदर्शित करते हैं। यही क्रिया **संवेदनशीलता** कहलाती है। प्रत्येक जीव चाहे वह अमीबा हो या मनुष्य हर कोई संवेदनशीलता प्रदर्शित करता है। सभी जीवों में उसे दर्शाने का प्रकार भिन्न–भिन्न होता है। यदि हम एककोशिकीय जीव अमीबा के सुई चुभा दे तो वह अपने कूट पादों को समेट कर गोल हो जाता है। जबकि विकसित जन्तुओं में तंत्रिका तंत्र एवं अन्तःस्त्रावी तंत्र पाये जाते हैं जो शरीर का नियमन करते है। नॉन–कार्डेटा प्राणियों में या उनसे कम विकसित प्राणियों में पूर्ण तंत्रिका तंत्र के बजाय संवेदी कोशिकाएं पायी जाती है जो वातावरण के परिवर्तनों के प्रति अपनी संवेदनशीलता दर्शाती है। संवेदी अंगों से प्राप्त सूचनाएं तंत्रिकाओं द्वारा नियंत्रण केन्द्र मस्तिष्क, मेरूरज्जु एवं गुच्छिकाओं तक पहुंचती है जिसे आवेग का संचरण कहते हैं। इन आवेगों का नियंत्रण केन्द्रों द्वारा विश्लेषण होता है एवं उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया प्रभावित या संवेदी अंगों तक पहुंचायी जाती है। जन्तुओं में नियमन का कार्य तंत्रिकाओं द्वारा तीव्र गति से किया जाता है।

8.13.2 तंत्रिका तंत्र (Nervous System)

जन्तुओं में संवेदनाओं के नियंत्रण व समन्वय का कार्य तंत्रिका तथा पेशी ऊतक द्वारा किया जाता है। प्रत्येक जन्तु स्वयं को वातावरण के अनुरूप सामान्य स्थिति में रहने का प्रयत्न करता है इसी प्रकार जब आकस्मिक परिस्थिति आती है अर्थात् गर्म वस्तुओं को छूना, कील का पैर में लगना, किसी व्यक्ति को छूना आदि क्रियाएं होती है तब हमारा शरीर इन क्रियाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया तंत्रिका तंत्र द्वारा प्रदर्शित करता है।

तंत्रिका तंत्र का निर्माण कई तंत्रिका कोशिकाओं अर्थात् न्यूरॉन से मिलकर होता है। तंत्रिका कोशिका के तीन भाग होते हैं – कोशिका काय, तंत्रिकाक्ष (Axon) एवं द्रुमाश्म (Dendrite)।

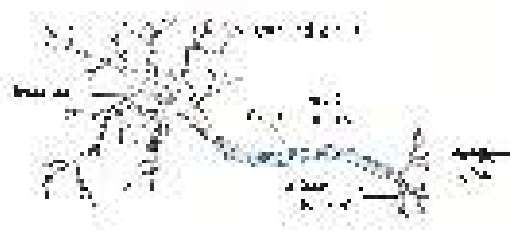

चित्र 8.49 : तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन)

(i) कोशिका काय (Cell body) – तंत्रिका कोशिका के इस भाग में कोशिका द्रव्य भरा होता है। इस भाग में केन्द्रक, अन्य कोशिकांग, निस्सल कण एवं न्यूरोफाइब्रिल्स तंतुक पाये जाते हैं।

(ii) तंत्रिकाक्ष (Axon) कोशिका काय के एक तरफ से लम्बी, बेलनाकार संरचना निकलती है जो तंत्रिकाक्ष कहलाती है। इसमें कोशिकाद्रव्य पाया जाता है। तंत्रिकाक्ष पर वसा की परत चढ़ी होती है जिसे माइलिन आच्छद कहते हैं। यह विद्युतरोधी की तरह कार्य करती है। तंत्रिकाक्ष के अन्तिम सिरे पर कई शाखाएं निकलती है जो बटन समान संरचनाओं में समाप्त हो जाती हैं।

(iii) द्रुमाश्म (Dendrite) – तंत्रिका कोशिका से कई द्रुमाश्म निकलते हैं जो तंत्रिकाक्ष के अलावा सभी दिशाओं में फैले रहते हैं, ये शाखित होती हैं।

जब सूचनाएं तंत्रिका कोशिका के द्रुमाकृतिक सिरे द्वारा उपार्जित की जाती है तो उसी समय एक रासायनिक क्रिया द्वारा विद्युत आवेग उत्पन्न होता है। यह आवेग द्रुमाश्म से कोशिका काय तक पहुंचता है और तब यह तंत्रिकाक्ष (एक्सॉन) में होता हुआ इसके अंतिम सिरे तक पहुंच जाता है। एक्सॉन के अंत में विद्युत आवेग कुछ रसायनों का विमोचन करती है ये रसायन रिक्त स्थान या सिनेप्स को पार करते हैं और आगे की तंत्रिका कोशिका की द्रुमाश्म में इसी तरह का विद्युत आवेग प्रारंभ करता है। यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है। अर्थात् पहले सूचनाएं ग्रहण की जाती है तत्पश्चात् यह विद्युत आवेग की तरह यात्रा करती है फिर यह विद्युत आवेग रासायनिक आवेग में परिवर्तित होकर संचरित होता है।

मानव के तंत्रिका तंत्र को तीन भागों में विभक्त किया जाता है– (1) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (2) परिधीय तंत्रिका तंत्र (3) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र।

(1) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र – इस तंत्र में मस्तिष्क व मेरूरज्जु नियंत्रण केन्द्र होते हैं।

(a) मस्तिष्क – यह शरीर का सबसे कोमल व महत्वपूर्ण अंग होता है। यह करोटि के कपाल भाग की अस्थियों से ढका एवं सुरक्षित रहता है अर्थात् यह करोटि बाह्य आघातों से हमारे मस्तिष्क की रक्षा करती है। मस्तिष्क में तीन मुख्य भाग होते हैं– अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क। सामान्य मनुष्य के मस्तिष्क का भार 1350 ग्राम होता है तथा इसका आयतन 1300 CC होता है।

(i) अग्र मस्तिष्क: मस्तिष्क का मुख्य संवेदनाओं का केन्द्र

होता है। इसके भिन्न–भिन्न क्षेत्रों पर सुनने, सूंघने, देखने आदि के केन्द्र होते हैं। अग्र मस्तिष्क के ही अलग–अलग क्षेत्रों पर संवेदी सूचनाएं ग्रहण की जाती है। अर्थात् इस मस्तिष्क भाग में सोचने, पहचानने, स्मृति, चिंतन, इच्छाशक्ति आदि के क्षेत्र पाये जाते हैं जो इन क्रियाओं का नियंत्रण एवं समन्वय करते हैं। शरीर की विभिन्न क्रियाएं जैसे भूख लगना, प्यास आदि का लगना का नियंत्रण इसी भाग द्वारा किया जाता है।

(ii) मध्य मस्तिष्कः इसमें लगभग सभी अनैच्छिक क्रियाओं के केन्द्र पाये जाते हैं जैसे खाने को देखते ही मुंह में पानी आना, धूप में निकलते ही पुतली का सिकुड़ जाना, प्रतिवर्ती क्रिया आदि।

(iii) पश्च मस्तिष्कः सभी अनैच्छिक क्रियाओं का नियंत्रण करता है जैसे रक्तचाप, उल्टी का आना, क्रमाकुंचन, हृदय की धड़कन, पाचन, उत्सर्जन, परिसंचरण आदि। व्यक्ति के मुख्य कार्य हाथ–पैर एवं अन्य अंगों की पेशियों का नियंत्रण पश्च मस्तिष्क के अनुमस्तिष्क भाग द्वारा किया जाता है। इसी भाग द्वारा एक सीधी रेखा में चलना भी नियंत्रित होता है। शराब पीने वाले व्यक्तियों में शराब का सर्वाधिक असर उनके इसी भाग पर होता है। इस कारण वे लड़खड़ा कर चलते हैं।

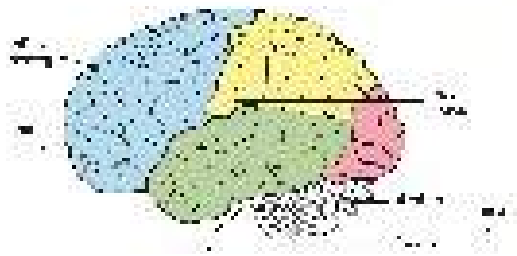

चित्र 8.50 : मानव मस्तिष्क

(b) मेरूरज्जु – यह लम्बा एवं बेलनाकार होता है। यह हमारे मेरूदण्ड में सुरक्षित रहता है। इसका अग्र भाग मस्तिष्क के मेडुला ऑबलॉगेटा से जुड़ा रहता है एवं पश्च भाग मेरूदण्ड में पतले धागे के रूप में समाप्त होता है। मेरूरज्जु से 31 जोड़ी तंत्रिकाएं निकलती है जिसे मेरूतंत्रिकाएं कहते हैं। इसका प्रमुख कार्य प्रतिवर्ती क्रियाओं का क्रियान्वयन करना है। इस क्रिया के अन्तर्गत यह संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाती है तथा मस्तिष्क से प्राप्त संदेशों व निर्देशों को अंगों तक भेजती है।

(2) परिधीय तंत्रिका तंत्र – केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के विभिन्न भागों से निकलने वाली तंत्रिकाओं को परिधीय तंत्रिका तंत्र शामिल करते हैं। मानव में मस्तिष्क से 12 जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं निकलती है जो आँख, नाक, कान आदि अंगों को जाती है तथा इनका नियमन करती है।

(3) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र – यह शरीर की कई अनैच्छिक क्रियाओं जैसे हृदय का धड़कना, क्रमानुकुंचन, पाचन आदि क्रियाओं का नियंत्रण इस तंत्रिका तंत्र द्वारा किया जाता है। इस तंत्र के दो भाग अनुकम्पी तथ परानुकम्पी होते हैं।

प्रतिवर्ती क्रिया एवं प्रतिवर्ती चाप
(Reflex action and reflex arch)

प्रतिवर्ती क्रियाएं अनैच्छिक होती है अर्थात् हमारी इच्छा–शक्ति का इन पर प्रभाव नहीं होता है। इन क्रियाओं का नियन्त्रण मेरू–रज्जु द्वारा होता है। प्रत्येक मेरू तंत्रिका के दो मूल (Two roots) होते हैं। पृष्ठ मूल (Dorsal root) एवं अधर मूल (Ventral root)। पृष्ठ मूल संवेदी तंत्रिका तन्तुओं का बना होता है। अधर मूल चालक तंत्रिका–तन्तुओं का बना होता है। पैर की त्वचा पर कांटा चुभने पर त्वचा में स्थित संवेदी कोशिकाएं इस उद्दीपन द्वारा उत्तेजित हो जाती है। संवेदी कोशिकाओं से यह उद्दीपन आवेग के रूप में संवेदी तन्तुओं से होता हुआ पृष्ठ मूल में जाता है। पृष्ठ मूल से यह आवेग मेरू–रज्जु के धूसर द्रव्य में पहुंचता है। मेरू–रज्जु में इस सूचना का विश्लेषण होता है एवं आवश्यक निर्देश चालक तन्तुओं द्वारा अधर मूल में जाता है। यह निर्देश चालक तंत्रिका से सम्बन्धित अंग तक आता है जिसके फलस्वरूप पेशियां (Muscle) पैर को तुरन्त गति देकर वहां से हटाती है। प्रतिवर्ती क्रियाओं की गति तीव्र होती है। इस क्रिया में संवदांग से लेकर सम्बन्धित अंग की पेशियों तक के पूरे मार्ग को प्रतिवर्ती चाप (Reflex-arch) कहते हैं। प्रतिवर्ती क्रिया शीघ्रता से सम्पन्न हो जाती है जिससे प्राणी हानिकारक संवेदनाओं के घातक प्रभाव से बच सकता है। प्रतिवर्ती क्रियाओं का नियन्त्रण मेरू–रज्जु करता है अतः मस्तिष्क को अन्य आवश्यक कार्यों के लिए अवसर मिल जाता है ।

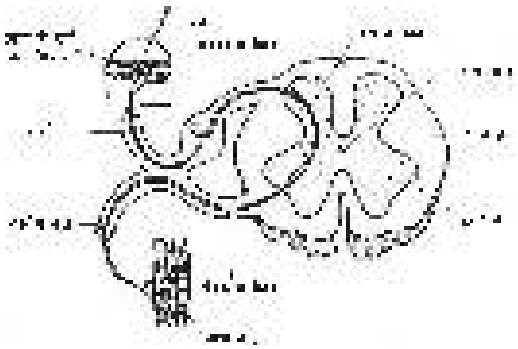

चित्र 8.51 : प्रतिवर्ती क्रिया का आरेख

8.13.3 अन्तःस्त्रावी तंत्र

(Endocrine System)

मानव शरीर में नलिका–विहीन ग्रंथियां पाई जाती हैं जो अपना स्त्रवण सीधे रूधिर वाहिनियों में डालती हैं ऐसी ग्रंथियों को **अन्तःस्त्रावी ग्रंथियां** कहते हैं। जैसे – पीयूष ग्रंथि, अग्नाशय ग्रंथि, थायरॉयड ग्रंथि आदि (चित्र 8.27)। अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों से स्त्रावित पदार्थ को हार्मोन कहा जाता है। यह हमारे शरीर में रक्त या रूधिर द्वारा परिवहन करके लक्ष्य क्षेत्रों या अंगों पर पहुंचते है। हार्मोन हमारे शरीर में होने वाले कई क्रियाओं जैसे परिसंचरण, पाचन, उपापचय, उत्सर्जन, श्वसन आदि का संचालन व नियमन करते हैं। इनका प्रभाव मंदगति से होता है तथा यह सूक्ष्म मात्रा में स्त्रावित किये जाते हैं।

पीयूष ग्रंथि अग्रमस्तिष्क में स्थित होती है, वृद्धि हार्मोन पीयूष ग्रंथि से स्त्रावित होता है। पीयूष ग्रंथि को 'मास्टर ग्रंथि' भी कहा जाता है क्योंकि ये शरीर के कई अन्य अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों का नियंत्रण करती है। पीयूष ग्रंथि को नियन्त्रण करने का कार्य हाइपोथैलेमस करता है। इस कारण हाइपोथैलेमस को 'मास्टर ऑफ मास्टर ग्रंथि' कहते हैं। वृद्धि हार्मोन के असंतुलन के कारण व्यक्ति या तो बहुत लम्बा या फिर बौना रह जाता है।

थायरॉक्सिन हार्मोन थायरॉइड या अवटू ग्रंथि से स्त्रावित होता है। यह ग्रंथि श्वासनली के अधर पार्श्व तल पर स्वर यंत्र के समीप स्थित होती है। इस हार्मोन के असंतुलित स्त्राव के कारण गलगण्ड या ग्वाइटर (Goiter) नामक रोग हो जाता है। जिससे गर्दन सूजी हुई दिखाई देती है। थायरॉक्सिन हार्मोन हमारे शरीर में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा आदि का उपापचय करता है जो शरीर को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक है। थायरॉक्सिन हार्मोन के लिए आयोडीन बहुत आवश्यक है। आयोडीन की कमी से ही थायरॉक्सिन हार्मोन का शरीर में संतुलन बिगड़ने लगता है जिसे गलगण्ड रोग हो जाता है।

थाइमोसिन नामक हार्मोन थाइमस ग्रंथि से स्त्रावित होता है जो वक्ष में पायी जाती है। इस हार्मोन का मुख्य कार्य प्रतिरक्षा तंत्र का पूर्ण विकास करना है जिससे हमारा शरीर रोगाणु से लड़ने में सक्षम बनता है। इस ग्रंथि के अधिक सक्रिय होने पर टॉन्सिल बढ़ जाते हैं जिससे टॉन्सिलाइटिस रोग हो जाता है।

अग्नाशय ड्योडीनम के समीप स्थित होता है। इन्सुलिन हार्मोन का स्त्रावण अग्नाशय ग्रंथि के द्वारा होता है। ये हार्मोन रक्त शर्करा को नियंत्रित करता है यदि यह हार्मोन सही मात्रा में स्त्रावित नहीं होता तो रक्त शर्करा बढ़ या घट जाती है जिससे हमें मधुमेह (Diabetes) नामक रोग हो जाता है।

एड्रीनल ग्रंथि वृक्कों के ऊपर स्थित होती है। एड्रिनलीन हार्मोन, एड्रीनल ग्रंथि द्वारा स्त्रावित किया जाता है। यह हार्मोन सीधे ही रूधिर में स्त्रावित किये जाते हैं तथा उससे होते हुए लक्ष्य अंगों तक पहुंचता है जिसके कारण जब हम संकट में होते हैं तब हृदय धड़कन में तेजी आ जाती है जिससे हमारे शरीर में पेशियों को तेजी से ऑक्सीजन की पूर्ति की जाती है। सम्बन्धित अंगों का अन्य अंगों से रूधिर कम करके भेजा जाता है तथा श्वसन दर भी बढ़ जाती है।

नर में नर जनन ग्रंथि उपस्थित होती है जो बालक में यौवनारंभ के समय टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन का स्त्रावण करती है जो बालक के किशोरावस्था के सभी द्वितीयक लैंगिक लक्षण तथा जनन अंगों का विकास करते हैं।

मादाओं में मादा जनन ग्रंथि उपस्थित होती है जो एस्ट्रोजन हार्मोन का स्त्रावण करती है जो बालिकाओं के शरीर का एवं द्वितीयक लैंगिक लक्षणों का विकास करती है।

8.13.4 हार्मोनों के द्वारा पादपों में नियमन

(Regulation in plants by hormones)

सामान्यता यह माना जाता है कि पौधों की वृद्धि मृदा में उपस्थित खनिज लवणों व वातावरणीय पारिस्थितयों पर निर्भर करती है। मगर आज यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो चुकी है कि कुछ रासायनिक पदार्थ भी पादपों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। ये पदार्थ पादप के एक भाग में उत्पन्न होते हैं तथा अन्य भाग में संवहित होने पर उस भाग की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। पादप भागों की वृद्धि को नियमित, नियंत्रित करने वाले इन रसायनों को **पादप हार्मोन** नाम दिया गया ।

पादप हार्मोनों का कृषि में उपयोग

(Uses of plant hormones in agriculture)

पादप हार्मोनों का कृषि में व्यापक उपयोग किया जाने लगा है। वृद्धि को तीव्र या मन्द करने के उद्देश्य से इनका प्रयोग होता है। प्रमुख वृद्धि नियंत्रकों में ऑक्सिन (2, 4, –डी; 1, 4, 5, टी; एन, ए. ए.); जिबरेलीन, साइटोकाइनिन, इथाईलीन व ए.बी. ए. है। इनमें से ए.बी.ए. एक प्रमुख वृद्धि निरोधक हार्मोन है।

कलमों में जड़ें उत्पन्न करने के लिए आई. बी.ए., व फलों को शीघ्र पकाने के लिए इथरल का प्रयोग किया जाता है। बगीचों में व फसलों के बीच उगे खरतपतवार हटाने में भी

ऑक्सीन का प्रयोग होता है।

पादप व जन्तुओं के नियमन में कुछ प्रमुख अंतर हैं, जैसे–

1. पादपों में तंत्रिका तंत्र पेशियाँ नहीं होती, जबकि जन्तुओं में ये उपस्थित है।
2. जन्तुओं के समान पादपों में सूचनाओं के चालन के लिये कोई विशिष्टीकृत ऊत्तक नहीं होते।
3. पादप कोशिकाओं में आकार परिवर्तन की प्रक्रिया जन्तुओं से पूर्णतः भिन्न है।

8.14 प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक (Famous Indian Scientist)

डॉ. सर जगदीश चन्द्र बोस का जीवन परिचय

डॉ. सर जगदीशचन्द्र बोस का जन्म 30 नवम्बर 1858 में पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के मेमनसिंह नामक स्थान पर हुआ। डॉ. बोस के पिता भगवान चन्द्र बसु ब्रह्म समाज के नेता थे तथा फरीदपुर, वर्धमान एवं अन्य स्थानों पर उप–मजिस्ट्रेट थे। ग्यारह वर्ष की आयु तक इन्होंने गांव के ही एक विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी। उनके पिता मानते थे कि अंग्रेजी सीखने से पहले अपनी मातृभाषा का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है अतः डॉ. बोस की शिक्षा एक बांग्ला विद्यालय में प्रारम्भ हुई। विक्रमपुर में 1915 में एक सम्मेलन को संबोधित करते हुऐ, डॉ. बोस ने कहा "उस समय पर बच्चों को अंग्रेजी विद्यालयों में पढ़ाना हैसियत की निशानी माना जाता था। मैं जिस बांग्ला विद्यालय में पढ़ता था वहाँ पर मेरे दायीं ओर मेरे पिता के मुस्लिम परिचारक का बेटा बैठा करता था और मेरी बांई ओर एक मछुआरे का बेटा बैठता था। ये ही मेरे खेल के साथी भी थे। इन साथियों से पक्षियों, जानवरों व जलजीवों की कहानियाँ मैं कान लगाकर सुनता था। शायद इन्हीं कहानियों ने मेरे मस्तिष्क में प्रकृति की संरचना पर अनुसंधान करने की गहरी रूचि जगाई।" प्रारम्भिक विद्यालयी शिक्षा के बाद वे कलकत्ता (कोलकाता) आ गये तथा सेंट जेवियर विद्यालय से विज्ञान स्नातक का अध्ययन किया।

जगदीश चन्द्र बोस की जीव विज्ञान में बहुत रूचि थी। 22 वर्ष की आयु में चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई करने के लिये लंदन चले गये मगर स्वास्थ्य खराब रहने की वजह से इन्होंने डॉक्टर (चिकित्सक) बनने का विचार त्याग कर कैम्ब्रिज के क्राइस्ट कॉलेज में प्रवेश लिया और वहाँ भौतिकी के एक प्रसिद्ध प्रोफेसर फादर लाफोण्ट ने बोस को भौतिक विज्ञान के अध्ययन हेतु प्रेरित किया। सन् 1885 में वे स्वदेश लौटे तथा भौतिकी के सहायक प्राध्यापक के रूप में प्रेसिडेंसी कॉलेज में पढ़ाने लगे। इस कॉलेज में वे 1915 तक रहे। उस समय भारतीय शिक्षकों को अंग्रेज शिक्षकों की तुलना में एक तिहाई वेतन दिया जाता था। इस अन्याय का जगदीश चन्द्र बोस ने विरोध किया तथा बिना वेतन के तीन वर्षों तक वहाँ पढ़ाते रहे जिसकी वजह से उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो गई, उन पर काफी कर्जा हो गया था। इस कर्जे को चुकाने के लिये उन्हें अपनी पुश्तैनी जमीन भी बेचनी पड़ी। चौथे वर्ष जगदीश चन्द्र की जीत हुई और उन्हें अंग्रेजी शिक्षकों के समकक्ष पूरा वेतन दिया गया। बोस एक विख्यात शिक्षक थे तथा कक्षा में अध्यापन हेतु बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक प्रदर्शनों का भरपूर उपयोग करते थे। बोस के ही कुछ छात्र जैसे सतेन्द्र नाथ बोस आगे चलकर प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी बने।

जगदीशचन्द्र बोस हमारे देश के प्रथम प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, जिन्हें भौतिकी, जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान तथा पुरातत्व का गहन ज्ञान था। वे अग्रणी वैज्ञानिक थे जिन्होंने रेडियो तथा सूक्ष्म तरंगों की प्रकाशिकी पर कार्य किया।

वनस्पति विज्ञान में उन्होंने कई महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। उल्लेखनीय है कि वे ऐसे प्रथम भारतीय शोधकर्ता एवं वैज्ञानिक थे, जिन्होंने एक अमेरिकन पेटेंट प्राप्त किया। उन्हें रेडियो विज्ञान का जनक माना जाता है। वे विज्ञान कथाएं भी लिखते थे तथा उन्हें बंगाली विज्ञान कथा–साहित्य का जनक भी माना जाता है। कोलकाता में नवम्बर 1894 के एक सार्वजनिक प्रदर्शन के दौरान बोस ने एक मिलिमीटर रेन्ज माइक्रोवेव तरंग का उपयोग दूर रखे बारूद को प्रज्वलित करने तथा घंटी बजाने में किया। बोस ने एक बंगाली निबंध "अदृश्य आलोक" में लिखा था कि "अदृश्य प्रकाश आसानी से ईंट की दीवारों, भवनों आदि के भीतर जा सकती है, इसलिये तार के बिना प्रकाश के माध्यम से संदेश संचारित हो सकता है।"

बायोफिजिक्स के क्षेत्र में जगदीश चन्द्र बोस का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अलग–अलग परिस्थितियों में पादपों की कोशिकाओं में बदलाव का विश्लेषण करके वे इस नतीजे पर पहुँचे कि पौधे संवेदनशील होते हैं। वे दर्द महसूस कर सकते हैं, स्नेह अनुभव कर सकते हैं। बसु ने एक यन्त्र क्रेस्कोग्राफ का अविष्कार किया तथा इस यन्त्र से विभिन्न उत्तेजकों के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया का अध्ययन किया।

1917 में जगदीश चन्द्र बोस को "नाइट (Knight)" की उपाधि प्रदान दी गई तथा भौतिक तथा जीव विज्ञान में किये गये अनुसंधानों के लिये 1920 में रॉयल सोसायटी, लंदन के फैलो (FRS = Fellow of Royal Society) चुन लिये गये। खास बात यह है कि बोस ने अपना पूरा शोधकार्य बिना किसी महंगे उपकरण तथा सामान्य प्रयोगशाला में किया था। वे एक उन्नत उपकरणों युक्त प्रयोगशाला बनाने का विचार कर रहे थे। "बोस इन्स्टीट्यूट (बोस विज्ञान मन्दिर) उनकी इसी सोच का परिणाम है जो विज्ञान में शोधकार्य के लिये हमारे राष्ट्र का एक प्रसिद्ध केन्द्र है।

डॉ. जगदीशचन्द्र बोस की मृत्यु दि. 23 नवम्बर 1937 को गिरिडीह (बंगाल प्रेसीडेंसी) में हुई। उनका जीवन एवं कृतित्व हमारी आज की युवा पीढ़ी के लिये एक आदर्श है। डॉ. बोस के जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि यदि व्यक्ति में प्रतिभा व लगन हो तो वह सामान्य प्रयोगशाला एवं उपलब्ध संसाधनों से भी उच्च कोटि के अनुसंधान कर सकता है। डॉ. बोस का आदर्श व्यक्तित्व एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण युवा पीढ़ी के लिये प्रेरणा का स्रोत सदैव बना रहेगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पर्ण की शिराओं में जायलम एवं फ्लोएम पाये जाते हैं।
2. जायलम का मुख्य कार्य जल को पौधे के प्रत्येक भाग तक पहुँचाना है एवं फ्लोएम का मुख्य कार्य पर्ण में बने खाद्य पदार्थ को पौधे के प्रत्येक भाग तक पहुँचाना है।
3. पर्ण की निचली अधिचर्म में रन्ध्र (Stomata) पाये जाते हैं। रन्ध्र के द्वारा गैसों का विनिमय होता है।
4. जल एवं खनिज लवणों का संवहन पौधों के विभिन्न भागों तक तने द्वारा होता है।
5. पादप कोशिका में जीवद्रव्यकुंचन पाया जाता है।
6. वाष्पोत्सर्जन–संसंजन तनाववाद सिद्धान्त के कारण जल ऊपर की ओर खिंचता है।
7. जन्तु जो भोजन करते हैं वे शरीर में विशिष्ट अंगों द्वारा सूक्ष्म रूपों में विभक्त हो जाते हैं एवं पाचक रसों की सहायता से सरल यौगिकों में परिवर्तित हो जाते हैं। इन क्रियाओं को करने हेतु विशिष्ट अंग होते हैं जिन्हें **पाचन अंग** कहते हैं
8. आमाशय भोजन को पचाता है। आमाशय के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) भोजन को अम्लीय बनाने के साथ भोजन के साथ आये जीवाणुओं को मार डालता है।
9. हीमोग्लोबिन श्वसन वर्णक होता है जो RBC (लाल रक्त कणिकाएं) में उपस्थित होता है।
10. रूधिर वाहिकाओं की भित्ति के विरूद्ध जो दाब लगता है उसे **रक्तदाब** कहते हैं।
11. जीवित जन्तुओं में अवशोषित पोषक पदार्थ, जल व अपशिष्ट उत्पादों को शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने की क्रिया को **परिसंचरण** कहते हैं। इससे सम्बन्धित तंत्र को **परिसंचरण तंत्र** कहते हैं।
12. नर जनन कोशिका अर्थात् शुक्राणु का निर्माण वृषण में होता है। मादा जनन कोशिका अर्थात् अण्डाणु का निर्माण अण्डाशय में होता है।
13. *स्पाइरोगाइरा, ओसिलेटोरिया* आदि तन्तुकी शैवालों में अलैंगिक जनन विखण्डन विधि द्वारा सम्पन्न होता है।
14. शकरकंद की जड़ों पर तथा आलू के कंद पर प्रसुप्त कलिकाएं पायी जाती हैं इनसे कायिक जनन द्वारा नव पादप तैयार हो जाते हैं।
15. मानव ने विभिन्न पादपों की कायिक जनन क्षमता का उपयोग करते हुए कायिक जनन की कुछ विधियाँ विकसित की जिनके द्वारा त्वरित गति से तथा कम समय में अधिकाधिक पादप तैयार किये जा सकते हैं।
16. पुष्पवृन्त के शीर्ष एवं फूले हुए भाग को **पुष्पासन** कहते हैं। पुष्पासन पर पुष्प के चारों चक्र **बाह्यदलपुंज, दलपुंज, पुमंग** तथा **जायांग** स्थित होते हैं। पुमंग एवं जायांग को जनन चक्र तथा बाह्यदलपुंज को सहायक चक्र कहते हैं।
17. उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप अपशिष्ट पदार्थ बनते हैं इन्हें शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया को उत्सर्जन कहते हैं।
18. पादपों में कोई विशेष उत्सर्जन अंग नहीं पाये जाते हैं क्योंकि इनमें बने अधिकांश अपशिष्ट पदार्थ पौधों के उपयोग में आ जाते हैं।
19. बिन्दु स्राव विशेष जल रंध्रों द्वारा होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः –

1. पादपों में जल का संवहन होता है :
   (अ) फ्लोएम द्वारा
   (ब) जायलम द्वारा

(स) चालनी नलिका द्वारा
(द) अधिचर्म द्वारा

2. पौधों को जो जल प्राप्त होता है, वह है :
(अ) आर्द्रताग्राही जल
(ब) गुरूत्व जल
(स) बिन्दु स्राव से प्राप्त जल
(द) केशिका जल

3. रन्ध्रों द्वारा विनिमय होता है :
(अ) जलवाष्प एवं गैसों का
(ब) ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन का
(स) ऑक्सीजन एवं कार्बोहाइड्रेट का
(द) नाइट्रोजन एवं जलवाष्प का

4. खाद्य पदार्थों का संवहन निम्न के द्वारा होता है :
(अ) जायलम (ब) फ्लोएम
(स) वात रंध्र (द) अधिचर्म

5. श्वसन वर्णक है–
(अ) लाल रक्त कणिका
(ब) श्वेत रक्त कणिका
(स) हीमोग्लोबिन
(द) इनमें से कोई नहीं

6. सामान्यतया शरीर का प्रकुंचन दाब कितना होता है–
(अ) 120 nm (ब) 90 nm
(स) 140 nm (द) 80 nm

7. आमाशय का कार्य नहीं है–
(अ) भोजन का संग्रहण
(ब) अवशोषण
(स) पाचन
(द) वसा का पूर्ण पाचन

8. विखण्डन का प्रमुख उदाहरण है–
(अ) *स्पाइरोगायरा* (ब) *ब्रायोफिल्लम*
(स) यीस्ट (द) *अमीबा*

9. *राइजोपस* में जनन की प्रमुख विधि है–
(अ) द्वि विखण्डन (ब) मुकुलन
(स) बीजाणुजनन (द) बहु विखण्डन

10. बीजाण्ड अवस्थित होते हैं–
(अ) अण्डाषय में (ब) वर्तिका में
(स) पुंकेसर में (द) भ्रूणकोष में

11. पादपों की उपापचय क्रिया मुख्यतः आधारित है:
(अ) प्रोटीन पर (ब) वसा पर
(स) कार्बोहाइड्रेट पर (द) विटामिन पर

12. जल रंध्र पाये जाते हैं :
(अ) जड़ में (ब) तने में
(स) पत्ती में (द) फूल में

13. बिन्दु स्राव देखा जा सकता है जब :
(अ) श्वसन अधिक होता है
(ब) अधिक अवशोषण एवं कम वाष्पोत्सर्जन
(स) प्रकाश संश्लेषण अधिक होता है
(द) विसरण अधिक होता है

14. यूरिओटेलिक उत्सर्जन पाया जाता है–
(अ) अमीबा व मेंढक में
(ब) पक्षी व मछली में
(स) मछली व सर्प में
(द) मानव व मेंढक में

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्नः

1. जलीय पौधों में उत्सर्जन किस विधि द्वारा होता है?
2. द्वार कोशिकाओं का क्या कार्य है ?
3. यूरिकोटेलिक उत्सर्जन किसे कहते हैं?
4. पौधे के मुख्य दो भाग बताइये।
5. जड़ से जल पत्तियों तक कौनसे संवहन ऊतक द्वारा पहुँचता है?
6. फ्लोएम का क्या कार्य है।
7. जीवद्रव्यकुंचन को परिभाषित कीजिये।
8. श्वसन किसे कहते हैं।
9. द्वि विखण्डन क्या है ?
10. पुष्पासन किसे कहते हैं ?
11. वायुदाब विधि के प्रमुख उदाहरण बताऐं।
12. जीवों में जनन की आवश्यकता क्यों होती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः

13. मूसला मूल एवं अपस्थानिक मूल में अन्तर बताइये।
14. जायलम एवं फ्लोएम ऊतक में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
15. निम्नलिखित को परिभाषित करिये।
विसरण, परासरण, जीवद्रव्य कुंचन, अन्तः शोषण
16. जड़ द्वारा सिंचित जल पत्तियों तक जिस सिद्धान्त के द्वारा पहुँचता है उसे समझाइये।
17. आमाशय के कार्यों का वर्णन कीजिए।

18. जन्तुओं में कितने प्रकार का परिसंचरण तंत्र पाया जाता है। उदाहरण द्वारा समझाइये।
19. अपचयी व उपचयी क्रियाएं किसे कहते हैं?
20. पादपों में विशेष उत्सर्जन अंग क्यों नहीं पाये जाते हैं? समझाइये।
21. मुकुलन क्या है ?
22. प्रतिवर्ती क्रिया को सउदाहरण समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्नः –

23. बिन्दु स्त्राव किसे कहते हैं? उदाहरण सहित समझाइये।
24. पर्ण की आन्तरिक रचना समझाइये।
25. मूल दाब को प्रयोग द्वारा समझाइये।
26. मानव के श्वसन तंत्र का सचित्र वर्णन कीजिए।
27. कलम लगाने की विधि का वर्णन करें।
28. द्विनिषेचन किसे कहते हैं ? व्याख्या कीजिये।
29. परागण पर टिप्पणी लिखें।
30. मानव जनन तंत्र को नामांकित चित्र द्वारा वर्णन कीजिये।

उत्तरमाला

1. (ब) 2. (द) 3. (अ) 4. (ब) 5. (स) 6. (अ) 7. (द)
8. (अ) 9. (स) 10. (अ) 11. (स) 12. (स) 13. (ब) 14. (द)

◆◆◆